Issue: March 2014

Van Sangyan

Tropical Forest Research Institute
(Indian Council of Forestry Research and Education)
PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur – 482021
Visit us at: http://tfri.icfre.gov.in (or) http://tfri.icfre.org

Dr. D.N.Tiwari,IFS(Retd),
Former Member,
Planning Commission

Message

I am pleased to know that the Tropical Forest Research Institute (TFRI), Jabalpur is starting a **monthly e-magazine "Van Sangyan"** addressing the practicing foresters, tree growers and other stakeholders. Tropical forest is an important repository of biodiversity and home to several indigenous communities. The unique biodiversity, ethno-botany, flora and fauna of the Central Indian region has always been a source of attraction not only to the tourist but also the researchers and academicians. TFRI is a premier institute of Indian Council of Forestry Research and Education (ICFRE), addressing the research in field of forestry in Central India. The principal aim of Research is to bring out nature's hidden treasures for the benefit of mankind and this magazine would provide an ideal platform for sharing of knowledge by the scientific community and practicing foresters with the stakeholders. This magazine would also provide a scope for the stakeholders to pose their queries related to field forestry.

It is a matter of great happiness to know that this magazine is launched in electronic form, thus ensuring the wide reach and free accessibility. I congratulate the Institute and the team involved for coming up with this novel idea. I wish grand success for the venture. I hope that the magazine will be highly useful to the target audience.

Dr. D.N. Tewari,
Former Member,
Planning Commission

From the Editor's desk

Van Sangyan is an open-access e-magazine published by TFRI, Jabalpur, addressing practicing foresters, farmers and tree growers. This e-magazine is available for free download on the institute's website.

We welcome the readers of *Van Sangyan* to write to us about their views and issues in forestry. Those who wish to share their knowledge and experiences can send them :

by e-mail to **vansangyan_tfri@icfre.org**

or, through post to The Editor, *Van Sangyan*,
Tropical Forest Research Institute,
PO-RFRC, Mandla Road,
Jabalpur (M.P.) - 482021.

The articles can be in English, Hindi, Marathi and Oriya, and should contain the writers name, designation and full postal address, including e-mail id and contact number.

TFRI, Jabalpur houses experts from all fields of forestry who would be happy to answer reader's queries on various scientific issues. Your queries may be sent to The Editor, and the expert's reply to the same will be published in the next issue of *Van Sangyan*.

I must congratulate my young team members Sanjay Singh, Naseer Md., Tresa Hamalton and Swarn lata for their phenomenal effort in conceptualization, design and bringing out *Van Sangyan* in a very short time. The team is out to make many creative improvements to the forthcoming issues.

We at "*Van Sangyan*" hope that you would find the information relevant and useful.

Looking forward to meet you all through future issues.

Dr. N. Roychoudhary
Editor

Contents

Page

रोपणी विधि (Nursery technique) प्रजाति – हल्दू एवं मुंडी 1
– आर. पी. साहू

कृषि वानिकी एक झलक – वेदों से वर्तमान तक 4
– डॉ. ननिता बेरी

हम और वन 9
– चन्द्र शेखर दिक्षित एवं लक्ष्मीकांत कौरार

Food from the forest 10
- Sanjay Singh, Dr. P.K. Khatri & Chandrashekhar Dixit

सागौन के बीजोत्पादन को प्रभावित करनेवाले कीट, फफूँद एवं उनका प्रबंधन 17
- डॉ. वी. एस. डडवाल एवं डॉ. पी. बी. मेश्राम

सागाच्या बीजोउत्पादनाला नुकसान करणारे कीटक, बुरशी आणि त्यांचा व्यवस्थापन 19
- डॉ. वी. एस. डडवाल एवं डॉ. पी. बी. मेश्राम

जैविक खाद (जैव उर्वरक)
- अविरल असैया 21

Forests for Tribals 24
- Swaran lata & Nidhi Mehta

वन उत्पाद आधारित विभिन्न इकाइयॉ/उपक्रम : निवेश की सम्भावनाएँ 30
– नीलू सिंह

कृषिवानिकी पर विश्व संगोष्ठी 34
– डॉ. ननिता बेरी

गुलाबः व्यावसायिक महत्व एवं उन्नत कृषि 38
– राजेश कुमार मिश्रा एवं नसीर मोहम्मद

Eco-friendly Plastics 43
- Rupnarayan Sett

Chironji (*Buchanania lanzan* Spreng.): Save me...! 47
- Naseer Mohammad, Fatima Shirin, Tresa Hamalton & Y. Mishra

Know your Biodiversity 50
- Swaran lata & Tresa Hamalton

रोपणी विधि (Nursery technique)

प्रजाति – हल्दू एवं मुंडी

आर. पी. साहू

उप वन मंडलाधिकारी, कवर्धा

1. प्रस्तावना –

1.1 हल्दू (Adina cordifolia) छत्तीसगढ़ प्रदेश के वन क्षेत्रों में पाए जाने वाले एक महत्वपूर्ण प्रजाति है, जो कि विशेषकर प्रदेश के साल एवं मिश्रित वनों में पाई जाती हैं। यह एक तेजी से बढ़ने वाला तथा हर प्रकर की मृदा में स्थापित होने वाला वृहत वृक्ष होता है, जिसके काष्ठ का प्रमुख उपयोग इमारती लकड़ी प्राप्त करना है। हल्दू प्रजाति के वृक्षों में पुष्पन की प्रकिया प्रतिवर्ष जून–जुलाई में होती है तथा बीज 15 अप्रैल से 10 मई के मध्य पककर तैयार होते हैं। यह एक अच्छी कॉपिस करने वाली प्रजाति भी है तथा औसत वार्षिक वृद्वि सागौन एवं अन्य तेजी से बढ़ने वाले प्रजातियों के अनुरूप है।

1.2 जहॉ तक मुंडी (Mitragyna parvifolia) का प्रश्न है, यह हल्दू के समान ही एक महत्वपूर्ण इमारती श्रेणी का वृक्ष है, जो कि हल्दू की तुलना में पथरीली एवं कम मृदा वाले क्षेत्रों में भी आसानी से स्थापित हो जाता है। हल्दू की भांति इसका पुष्पन जून–जुलाई के महीने में होता है एवं बीज भी 15 अप्रैल से 10 मई के मध्य पककर तैयार होते है। जहॉ तक औसत वार्षिक वृद्वि का प्रश्न है, हल्दू प्रजाति से इसकी औसत वृद्वि कुछ कम आंकी गई है।

1.3 प्रदेश के सरगुजा, बिलासपुर एवं रायपुर कृषि जलवायु प्रक्षेत्र (agro climatic zone) की हल्दू एवं मुंडी एक प्रमुख प्रजाति है। इसके अतिरिक्त यह बस्तर प्रक्षेत्र में भी पाई जाती है। फलस्वरूप प्रदेश के वन क्षेत्रों में जैव विविधिता की दृष्टि से राज्य कैम्पा के अंतर्गत हल्दू मुंडी प्रजाति के सघन वृक्षारोपण करने की योजना प्रारंभ की गई है। रोपण हेतु उत्कृष्ट पौधों की आवश्यकता होती है। ऐसे में विभाग में कार्यरत सहायक वन संरक्षक, श्री आर.पी. साहू द्वारा अपने 5–6 वर्षे के अनवरत प्रयास के आधार पर रोपणी विधि तैयार की गई है, जिसके मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैः–

2. बीज संग्रहण –

बीज संग्रहण की दिशा में बीज हेतु plus वृक्षों का चयन, संगहण अवधि एवं संग्रहण प्रकिया, महत्वपूर्ण होता है, अतः हल्दू एवं मुंडी प्रजाति के बीज संग्रहण की दिशा में सावधानी रखा जाना अत्यंत आवश्यक है। इस दिशा में निम्नानुसार प्रकिया अपनाई जानी आवश्यकता है :–

2.1 **Plus वृक्षों का चयन** – हल्दू प्रजाति के बीज के संग्रहण हेतु plus वृक्षों का चयन एवं चिन्हांकन का कार्य पुष्पन के पश्चात माह जनवरी तक कर लिया जाना चाहिये । उचित होगा प्रत्येक कृषि जलवायु प्रक्षेत्र के कम से कम एक या दो वनमंडलों में ऐसे वृक्षों का चयन वन संरक्षक द्वारा करा लिया जावे। ऐसे वृक्षों को plus tree के रूप में चयन किया जाना चाहिए जिनके तने में कोई विकृत न हो एवं तना सीधा और गोल हो। साथ ही ऐसे वृक्ष की छाती गोलाई 90 से.मी. से 120 से.मी. के मध्य हो। चयन करते समय वृक्ष की स्थिति का भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, ताकि बीज का संग्रहण आसानी से किया जा सके। चिन्हांकित वृक्ष का मार्च, अप्रैल एवं मई में नियमित निरीक्षण किया जाना चाहिये। साथ ही छत्र के नीचे धरातल की समस्त सूखे पत्तों की सफाई की जानी चाहिए, ताकि संग्रहण के समय अग्नि से बीज को सुरक्षित रखा जा सके। यही

प्रकिया मुंडी प्रजाति के plus वृक्षों का चयन में की जानी चाहिये।

2.2 **बीज संग्रहण** – बीज संग्रहण में समय संग्रहण अवधि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। हल्दू एवं मुंडी प्रजाति के बीजों की संग्रहण अवधि परिपक्व होने के साथ ही लगभग डेढ़ सप्ताह रहती है। समय से पहले संग्रहित बीज अपरिपक्व होते है, जिनका अंकुरण नहीं होता। साथ ही, विलंब होने पर बीज झड़कर हवा में उड़ जाते है, क्योंकि हल्दू एवं मुंडी के बीज अत्यंत हल्के होते है। जिन plus वृक्षों से बीज का संग्रहण किया जाना है, उन वृक्षों को माह अप्रैल के प्रथम सप्ताह उपरांत लगभग दो दिन के अंतराल में निरीक्षण किया जाना चाहिये ताकि बीज के पकने के सह समय का संज्ञान किया जा सके। जैसे ही बीज पककर तैयार हो जाते है, वृक्ष से गुठली के आकार के फलों को तोड़कर छाया में सुखया जाता है।

2.3 **गुठली से बीज प्राप्त करना** – गुठली के छाया में सूख जाने के उपरांत उसे दो से तीन इंच मोटाई में फैलाकर ऊपर से बारदाना से ढक दिया जाना चाहिये, ताकि बीजो को उड़कर फैलने से रोका जा सके। लगभग 10 दिनों के उपरांत बीज भूसा सहित झड़ जाते है एवं बीज को छान कर अलग जूट की छोटी थैलियों में भरकर छाया में भंडारण किया जाना चाहिये। यही विधि मुंडी प्रजाति के लिए भी अपनाई जाती है, परंतु मुंडी प्रजाति में गुठली को 10 दिन सुखाने बाद लकड़ी के हथौड़े से तोड़कर बीज और भूसी को अलग किया जाता है।

3. नर्सरी में बीज बुआई –

हल्दू एवं मुंडी प्रजाति के पौधों की तैयारी दोनो प्रकार से मातृ क्यारी (mother bed) में बीज बो कर एवं सीधे पालीथीन बैग में बीज बो कर की जा सकती है, परन्तु मातृ क्यारी में बीज बो कर अंकुरण के उपरांत उन्हें पालीथीन बैग में रोपित किये जाने से अंकुरण प्रतिशत अधिक होता है।

3.1 **मातृ क्यारी (mother bed) की तैयारी एवं बीज बुआई** – रोपणी में बीज बुआई हेतु मातृ क्यारी (mother bed) का निर्माण 15 मई के आसपास किया जाना चाहिए। 15X1 मी. माप की समोच्च मातृ क्यारी (raised mother bed) होनी चाहिये जिसकी ऊँचाई सतह के 20 से.मी. रखा जाना चाहिए। मातृ रोपणी की ऊपरी सतह पर 10 से.मी. मोटी रेतीली मिट्टी की परत बिछाया जाना चाहिए।

3.2 **पॉलीथीन बैग में बुआई** – हल्दू मुंडी के बीजों को सीधे पालीथीन बैग में बो कर भी पौधे की तैयारी की जा सकती है। इस हेतु ऐसे पॉटिंग मिक्सचर तैयार किया जाना चाहिए, जिसमें रेत की अधिक मात्रा के साथ खाद एवं मिट्टी की उचित मात्रा हो। इस पॉटिंग मिक्सचर के साथ पॉलीथीन बैग, जिसका माप 15X25 से.मी. हो, भरकर मई माह में तैयार किया जाना चाहिए। पॉटिंग मिक्सचर में खाद, रेत एवं मिट्टी का प्रतिशत 1:1.5:3 होना चाहिए। चूंकि बुआई रेत के साथ मिलाकर की जाती है, इसलिए ऐसी संभावना रहती है कि एक पॉलीथीन में अनेक बीजों का अंकुरण प्राप्त हो। ऐसे में एक पॉलीथीन में एक पौधे को रखते हुए शेष को अन्य पॉलीथीन बैग में प्रतिस्थापित किया जाना चाहिये।

4. **सिंचाई** – बीज बुआई उपरांत सुबह व शाम जब तापमान कम हो, ऐसी स्थिति में स्प्रेयर से सिंचाई किया जाना है। वर्षा लगातार हो जाने पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

5. **प्रतिरोपण** – अंकुरण पश्चात पौधा प्रतिस्थापित हो जाने के उपरांत माह जुलाई के तीसरे व चौथे सप्ताह में जब पौधों में 4 पत्ते आ जावे। नुकीले पतले लकड़ी की सहायता से 2–3 इंच गहराई से मिट्टी समेत एक–एक पौधे को निकालकर मिट्टी मिश्रण भरे पॉलीथीन के दोनों में प्रतिस्थापना किया जाता है या रूट–शूट बनाने हेतु समोच्च क्यारी में 15X20 की अंतराल में प्रतिस्थापित किया जाता है। वर्षा ऋतु में हर माह लगातार 2 बार निंदाई किया जाना आवश्यक है, क्योंकि हल्दू मुंडी के पौधों की जड़ अत्यंत महीन

व रेशेदार होती है। घास व खरपतवार की नियमित निंदाई न होने पर मर जाते हैं।

6. **एकलीकरण** – भरे पॉलीथीन में सीधे बीज बुआई किए जाने की स्थिति में 25 जुलाई के बाद जब पौधों में 4–6 पत्ते हो जाने पर 1 अच्छे पौधों को छोड़कर शेष और पौधों को अन्य खाली पॉलीथीन के दोनों में प्रतिस्थापना रोपण कर अंकुरित पौधों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार मातृ क्यारी में अधिक घने पौधों को निकालकर अन्य क्यारी व खाली दोनो में प्रतिस्थापना किया जाना चाहिये।
7. **रासायनिक खाद का उपयोग** – छोटे पौधों के प्रतिस्थापना के लगभग 4 से 5 सप्ताह बाद पौधों के चारो ओर 3–4 इंच मिट्टी में गहरे छेद कर डी.ए.पी. के 3–4 दाने डालकर छेद मिट्टी से बंद कर दिया जाता है। 2 माह बाद दूसरी बार खाद डालने हेतु फिर से डी.ए.पी. 6–8 दाने दोनों के मिट्टी में छिद्र बनाकर डाले जाते है व लगातार दिन में 1 बार सिंचाई किया जता है। वर्षा काल उपरांत अक्टूबर से दिसंबर तक हर तीसरे दिन सिंचाई किया जाता है। जनवरी से फरवरी में हर दूसरे दिन सिंचाई किया जाता है। मार्च से जून तक हर दिन शाम को अच्छी तरह से सिंचाई किया जाता है। मई माह में यदि आवश्यक हो, तो दिन में 2 बार सिंचाई किया जाना चाहिए। माह मार्च में पौधों की ऊँचाई के अनुसार डी. ए.पी. की एक मात्रा पुनः देना चाहिए।
8. **निंदाई–गुड़ाई** – वर्षा काल में हर 15 दिन में 1 बार पश्चात अक्टूबर से दिसंबर माह में एक बार निंदाई आवश्यक है। आगामी जनवरी से जून तक की अवधि में आवश्यक होने पर निंदाई किया जा सकता है।
9. हल्दू एवं मुंडी के पौधों की प्रथम शिफ्टिंग माह अक्टूबर में तत्पश्चात माह दिसंबर, मार्च एवं जून में किया जाना चाहिए।
10. **ग्रेडिंग** – पौधो की पॉलीथीन दोनों में प्रतिस्थापना में उपरांत माह अक्टूबर में प्रथम ग्रेडिंग पौधों की ऊँचाई अनुसार किया जाता है। एक बेड में लगभग एक ही समान ऊँचाई के पौधों की ग्रेडिंग कर शिफ्टिंग किया जाता है। आगामी ग्रेडिंग पुनः माह मार्च में किया जाना चाहिए।
11. **कीटनाशक दवाई** – हल्दू के पौधों में कीटों का प्रकोप अधिक होता है, अतः नियमित रूप से आवश्यकतानुसार उपयुक्त कीटनाशक का छिड़काव किया जाना चाहिए। मुंडी के पौधों में कीट प्रकोप कम होता है।
12. **रोपण** – रोपण काल 15 जून से 10 जुलाई में रोपित किए गए हल्दू व मुंडी के पौधों में अच्छी बड़वार प्राप्त होती है। अतः हल्दू एवं मुंडी प्रजाति के रोपण में 1 वर्ष पुराने पौधों का ही उपयोग किया जाना चाहिए।

कृषि वानिकी एक झलक – वेदों से वर्तमान तक

डॉ. ननिता बेरी

कृषि वानिकी प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

युगों–युगों से किसान अपने घर के आसपास फलदार वृक्षों के साथ कृषि फसलों को उगा रहा है जिसके द्वारा अपनी रोजमर्रा की जरूरते जैसे फल, फूल, चार, सब्जी, लकड़ी आदि को भी पूरा कर रहा है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण गृहवाटिका है जिसके अन्तर्गत जमीन के हर हिस्से का भरपूर उपयोग आम, नीम, जामुन के साथ गेहूँ , चावल, मक्का, दलहन एवं मसाला फसलें जैसे प्याज, लहसून, अदरक, हल्दी उगाकर कर रहे है।

वेदों में इस बात का भी जिक्र है कि बेल/ चिरौंजी/ऑवला/आम/बेर/गुलर/महुआ के फल को भुनकर या अचार बनाकर आदि मानव उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई गांव नहीं होता था जहॉ पंचवटी (पांच वृक्षों का समूह) न हो, जिसका अर्थ पॉच तत्व – भूमि, जल, वायु, अग्नि एवं लकड़ी से है। वेदों में हमेशा मनुष्य एवं वृक्ष के बीच गहरे संबंध का वर्णन रहा है। उदाहरणार्थ – वरहामित्र वृहत संहिता में वृक्ष और जल के बीच संबंध बताया गया है इसमें जलाशय बनाने का वास्तविक तकनीकी ज्ञान एवं इसके आसपास उगाये जाने वाले प्रजाति के बारे में विस्तृत वर्णन है एवं जलाशय के किनारे एवं छायादार एवं गहरी जड़ों वाले वृक्षों को लगाना ही प्रचलित है। 'वृक्ष आयुर्वेद' नामक किताब में पौध विज्ञान से संबंधित एक अध्याय है जिसके अन्तर्गत उत्तर भारत में आर्बो हार्टिकल्चर के तहत 170 वृक्ष, झाड़ी एवं शाक प्रजातियों के बीजों का संग्रहण, उपचार, भण्डारण एवं पौध वाटिका की स्थापना के बारे में विस्तृत जानकारी है। इसके अलावा पौध वाटिका लगाने के लिये स्थल का चयन, स्थल की तैयारी, जल प्रबंधन, पौध पोषण, पौधों से संबंधित रोग एवं उनका नियंत्रण, स्थल का नक्क्षा एवं विलुप्त प्रजातियों की सूची भी वर्णित है। सन् 1325 से 1354 सी.ई. में ईबा बटरा ने लिखा था कि मालावार समुद्री तट निवासी लोग घर के आसपास नारियल वृक्ष के साथ काली मिर्ची लगाते है जो कि कृषि वानिकी का ही एक रूप है। इसके अलावा वृक्षों के साथ अन्य मसाले पौधों को उगाने का भी जिक्र किया है। हिन्दू धर्म के पवित्र भागवद गीता में पीपल वृक्ष और औषधि पौधे को साथ उगाने के बारे में लिखा है। (बी मोहन कुमार,2014)

कृषिवानिकी पद्धति विविध आजीविका, आय, रोजगार एवं पर्यावरण संरक्षण के स्त्रोत सतत् रूप से उपलब्ध कराने मे हमेशा वरदान सिद्ध हो रही है। इस पद्धति के अंतर्गत भूमि के पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम) व अन्य खनिज तत्व के अवशेष का वृक्ष एवं सहयोगी फसलों द्वारा संयमित रूप से उपयोग करके उपलब्ध मात्रा को सतत् रूप से संतुलित करने के साथ भूमि की संपूर्ण उत्पादकता को भी बढ़ाता है। इस पद्धति में वृक्ष एवं सहयोगी फसल का चुनाव उस क्षेत्र के भौगोलिक संरचना, जलवायु एवं मृदा के प्रकार के अनुसार ही किया जाना चाहिये जो कि सफल कृषिवानिकी का महत्वपूर्ण आधार होता है।

वर्तमान परिवेश में कृषि भूमि का औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, जंनसख्या में लगातार वृद्धि, उपजाऊ भूमि की कमी, अनुपजाऊ भूमि मे वद्धि के कारण कृषिवानिकी ही एक मात्र सतत् एवं उचित तकनीक है। आज कृषिवानिकी की नई–नई पद्धतियॉ प्रमाणीकृत की जा रही है इन पद्धतियों का उचित माध्यम द्वारा समय–समय पर प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है। कृषिवानिकी के अंतर्गत पडती भूमि पर कार्बन का व्यापार, जैवऊर्जा, निजी भूमि में बांस की खेती, काष्ठ उद्योग, पल्प उद्योग, अप्राकृतिक लकड़ी और ईधन पर आधारित उद्योग इत्यादि के आशाजनक परिणाम मिल

रहे है। इसके अलावा विभिन्न पडती भूमि में वृक्ष के साथ औषधीय पौधों एवं जैव ईधन की खेती भी एक लाभदायक सौदा सिद्व हो रहा है।

इसलिये यह जानना आवश्यक है कि

कृषि वानिकी क्या है?

कृषि वानिकी

कृषि वानिकी भूमि प्रबन्ध की ऐसी प्राचीन पद्धति है जिसके अन्तर्गत एक ही समय में एक ही भूमि पर कृषि फसलों के साथ–साथ बहुउद्देशीय वृक्षों व चारा प्रदान करने वाली घास प्रजाति का उत्पादन एवं पशुपालन व्यवसाय भी किया जाता है। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों की आवश्यकताओं जैसे– अन्न, फल, सब्जी व चारे–ईंधन की आपूर्ति करना, साथ ही लघु उद्योगों के लिए कच्चा माल जैसे बांस एवं रस्सी इत्यादि उपलब्ध कराना है। इन सब प्रत्यक्ष लाभ के अलावा अप्रत्यक्ष लाभ जैसे– भूमि की उपजाऊ क्षमता को बनाना एवं बढ़ाने में सहायक होता है।

इस तरह से यह कहा जा सकता है कृषि वानिकी में मुख्यतः निम्न बातों का होना आवश्यक है –

(अ) इसमें दो या दो से अधिक प्रजातियॉ होती हैं जिसमें कम से कम एक बहुवर्षीय काष्ठ होती है।

(ब) इसमें दो या दो से अधिक उत्पाद प्राप्त होते हैं।

(स) कृषि वानिकी का चक्र एक साल से अधिक होता है।

(द) पारिस्थिकीय एवं आर्थिक दृष्टि में यह पद्धति एकाकी फसल व्यवस्था से ज्यादा जटिल होता है।

कृषि वानिकी पद्धति में निम्न तीन गुण होना आवश्यक

उत्पादकता : उत्पादन को बढ़ाकर लागत को कम करके श्रम गुणों में बढ़ोत्तरी करके

सतत्ता : वृक्षों के द्वारा भूमि क्षरण रोक कर उर्वरकता बढ़ाकर

स्वीकार्यता : स्थानीय परिवेश द्वारा स्वीकारना

कृषि वानिकी के प्रकार

- **कृषि–वन वृक्ष पद्धति** – इस पद्धति में वनवृक्ष और कृषि फसल साथ–साथ उगाई जाती है। वन फसल छाया देने वाली, सहारा देनेवाली फसल के रूप में भूमिका निभाती है। जहॉ एक ओर वृक्ष से उपयोगी वस्तुएं जैसे ईंधन, चारा, काष्ठ एवं सामान बांधने की सामग्री मिलती है, वहीं कृषि फसल भी निचले तल पर उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। जैसे – बबूल, खमेर, गुरार (वन वृक्ष) के साथ सब्जियों का उत्पादन।
- **वन चारागाह पद्धति** – इस पद्धति में वन वृक्ष के साथ निचली सतह पर घास उगाई जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य पशुओं के लिये चारा उपलब्ध कराना है। जैसे – शीशम के साथ दीनानाथ घास।
- **कृषि वन फलोद्यान पद्धति** – इस पद्धति में वन–वृक्ष और फलोद्यान के साथ कृषि फसल ली जाती है। जैसे – सफेद सिरस (वन वृक्ष), नीबू (फल वृक्ष) और गेहूँ (कृषि फसल)।
- **वनौषधि पद्धति** – इस पद्धति में वनवृक्ष के साथ औषधीय पौधे उगाई जाती है, जिसका मुख्य उद्देश्य वनवृक्ष के बीच में औषधीय पौध लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त करना है। जैसे– सागौन के साथ सफेद मूसली ।

कृषि वानिकी से लाभ

(1) एक साथ एक ही जमीन पर दो फसल (कृषि और वृक्ष) लगाने से सम्पूर्ण उत्पादकता बढ़ जाती है।

(2) अनुपयोगी भूमि का सदुपयोग हो जाता है और उसकी उत्पादकता में सुधार हो जाता है।

(3) अनाज, ईंधन, चारा, फल और रेशे का उत्पादन।

(4) वन पर ईंधन व चारा के लिये निर्भरता कम हो जाती है।

(5) लघु उद्योगों को बढ़ावा मिलता है।

(6) जमीन की सतह से लगभग 8 मिलियन टन पोषक तत्व ढहकर नष्ट होने से रूकते हैं।

(7) वृक्षों को लगाने से रासायनिक खाद की कम आवश्यकता होती है।

(8) नाईट्रोजन स्थिर करने वाले वृक्षों द्वारा भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाता है।

(9) वन चारागाह पद्धति द्वारा अधिक से अधिक चारा प्राप्त कर दूध, मांस, अंडा का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

(10) भूमि की नमी का संरक्षण करता है।

(11) अतिरिक्त आय और रोजगार बढ़ाता है।

(12) कुछ क्षेत्रों में निश्चित अंतराल में पड़ने वाले सूखे व कुछ क्षेत्रों में बाढ़ से होने वाली हानि को नियंत्रित करता हे।

कृषि वानिकी हेतु उपयुक्त वृक्षों के गुण :

(1) वृक्ष तेजी से बढ़ने वाले हों।

(2) वृक्ष की जड़ें इतनी गहराई में जाने वाली हों कि फसलों और पेड़ों को पोषक तत्व प्राप्त करने में स्पर्धा न हों।

(3) वृक्ष की ऊपरी शाखाओं का फैलाव कम होना चाहिये जिससे फसलों के ऊपर छाया का असर न पड़े।

(4) जलाऊ लकड़ी, ईमारती लकड़ी और चारा प्रदान करने वाली प्रजाति हो।

(5) पत्तियॉ जमीन के ऊपर गिरने के बाद मिट्टी में शीघ्रता और आसानी से मिल सके।

(6) वृक्ष वायुमंडल से नाईट्रोजन लेकर मिट्टी में उपलब्ध कराने वाली हो।

(7) वृक्षों का चयन आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरण के अनुकूल हो।

(8) कृषि फसलों पर बीमारी और कीड़ों का प्रसार न करने वाली हों।

(9) वृक्ष फसलों के दानों को चुगकर नष्ट करने वाली चिड़ियों को आकर्षित करने एवं आश्रय देने वाले न हों।

(10) वृक्ष उत्पाद बाजार की आवश्यकतानुसार हों।

कृषि वानिकी हेतु उपयुक्त कृषि फसल के गुण :

(1) फसल एकवर्षीय एवं जिसकी ऊॅचाइ 1 मी. से अधिक न हो।

(2) फसल की छत 0.25 मी. से 0.75 मी. से अधिक न हो।

(3) कम पोषक तत्व की आवश्यकता वाला हो।

(4) जड़ें गहराई में न जाकर भूमि सतह पर ही फैलने वाली हो।

(5) बीमारियों एवं कीड़ों के प्रसार करने वाली न हों।

(6) पानी, जगह और प्रकाश के लिये कम प्रतिस्पर्धी हो।

(7) कम लागत, अधिक आमदनी देने वाली हो।

वृक्ष कैसे भूमि की उत्पादकता में वृद्धि करने में सहायक हैं ?

प्रजाति	पत्तियो से उत्पादित शुष्क खाद (कि./हे./वर्ष)	समतुल्य रासायनिक खाद का मूल्य (रू.)	शुष्क कम्पोस्ट का मूल्य (रू.)
बबूल	8000	416	320
बांस	6000	312	240
सिरस	5000	260	200
सागौन	4600	235	185
नीलगिरि	1800	94	74

(शुष्क कम्पोस्ट का मूल्य स्थानीय मूल्य के हिसाब से 400 रूपये/1 किग्रा. है।)

बांस – गेहूँ वृक्ष–कृषि पद्धति

शीशम–मक्का वन वृक्ष –कृषि पद्धति

वन वृक्ष– कृषि पद्धति हेतु कुछ उपयुक्त वृक्ष और सब्जियॉ

क्र.	वन वृक्ष	कृषि फसल
1.	बबूल	मूली, गाजर, भिन्डी, बरबटी, पालक एवं टमाटर, बैगन
2.	सफेद सिरस	टमाटर, बैगन, पालक, मूली, गाजर, हल्दी, अरबी
3.	पापलर	मक्का, हल्दी, अरहर, हल्दी
4.	शीशम	गाजर, मूली, गॅवारफली, पालक, टमाटर, बैगन
5.	खमेर	भिन्डी, गॅवारफली
6.	सागौन	टमाटर, बैगन, गॅवारफली, गाजर और मूली

सागौन – हल्दी वनौषधि पद्धति

कृषिवानिकी हेतु प्रमुख बहुउद्देशीय वृक्ष एवं उनकी उपयोगिता

क्र.	प्रजाति का नाम	उपयोगिता
1.	बबूल	लकड़ी, चारा, रंग, गोंद, कोयला, नत्रजन, स्थिरीकारक
2.	खैर	चरा, कत्था, लकड़ी, नत्रजन, स्थिरीकारक
3.	सुबबूल	लकड़ी– जलाऊ, इमारती, चारा, नत्रजन, स्थिरीकारक
4.	शीशम	फर्नीचर, इमारती लकड़ी, चारा, नत्रजन स्थिरीकारक
5.	बॉस	चारा, घरेलू कार्य, गृह निर्माण, मृदा संरक्षण
6.	सिरस	कृषि औजार, बल्लियॉ, चारा, नत्रजन स्थिरीकारक
7.	सफेद सिरस	लकड़ी इमारती, जलाऊ, नत्रजन स्थिरीकारक
8.	काला सिरस	लकड़ी इमारती, जलाऊ, नत्रजन स्थिरीकारक
9.	हल्दू	लकड़ी, कृषि यंत्र, जलाऊ, चारा
10.	नीम	लकड़ी, इमारती, जलाऊ, चारा
11.	यूकेलिप्टस	बल्लियॉ, जलाऊ औद्योगिक
12.	पापुलर	चारा, माचिस, प्लाईवुड, लुग्दी
13.	खेजरी	चारा, इमारती लकड़ी
14.	अंजन	चारा, इमारती लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक

कृषि वानिकी में वन वृक्षों का कृषि फसलों पर एलिलोपैथिक प्रभाव

क्र.	वन वृक्ष	कृषि फसल
1.	बबूल	अ– गाजर, मूली, बरबटी, बैगन की उपज में कमी ब– धान का अंकुरण धीरे लेकिन उपज में वृद्धि
2.	शीशम	सब्जियॉ, गेहूँ और सोयाबीन उपज में वृद्धि
3.	सफेद सिरस	गेहूँ, सोयाबीन, उपज में वृद्धि
4.	करंज	फसलों के बायोमास में कमी
5.	नीलगिरी	बरबटी, ज्वार और सूरजमूखी की उपज में कमी
6.	सु–बबूल	मक्का/धान, ज्वार, सूरजमुखी और बरबटी के उपज में वृद्धि

कृषिवानिकी वैज्ञानिकों के सतत् शोघ एवं अनुसंधान प्रयासों से नई तकनीकियॉ विकसित हुई हैं। कृषिवानिकी में हुई वैज्ञानिक शोघ के फलस्वरूप आज कृषिवानिकी का वैज्ञानिक प्रबंधन संभव हों सका हैं। शुष्क क्षेत्रों में फल वृक्षों पर आधारित कृषिवानिकी, सिंचित क्षेत्रों में बांस पर आधारित वन वृक्ष–कृषि पद्धति, सिंचित क्षेत्रों में बांस आधारित कृषि वानिकी पद्धति, अतिरिक्त आय के लिये लाख– कृषि पद्धति, बारानी क्षेत्र के लिये बबूल–धान, शीशम–मक्का, छायादार फसलो पर आधारित सागौन – हल्दी पद्धति, सागौन – सफेद मूसली पद्धति, जलमग्न भूमि के लिये धान–बच पद्धति, बंजरभूमि के लिये करंज व आँवला पर आधारित पद्धति, पल्प उद्योग के लिये नीलगिरि पर आधारित कृषि वानिकी पद्धति प्रमाणीकृत किये जा चुके है।

संर्द्भः

बी मोहन कुमार , 2014. दक्षिण भारत में कृषिवानिकी , भारतीय खेती, फरवरी , 63 (11) 2–5

हम और वन

चन्द्र शेखर दिक्षित एवं लक्ष्मीकांत कौरार

जैव विविधिता प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

बचपन में गॉव के जंगलों में विचरते हमारे पैन नहीं थकते थे

कहीं झरने कहीं घास तो कही कांटे भी गड़ते थे

फिर भी अक्सर जंगलों की सैर किया करते थे

कंरोंदा, मकोरा, चिरोंजी, महुआ यही भोजन किया करते थे

फिर सेमर के कांटे खाकर पान का स्वाद लिया करते थे

उन दिनों बारिस भी अपने रूआब में हुआ करती थी

जैसे सावन बरसता था वैसी हरियाली भी हुआ करती थी

कही परिंदों के मीठे स्वर, तो कही हरियाली की महक

कही झरनों की कलकल, तो कही गीतों की गुंजन अक्सर सुनाई दिया करती थी।

आज पैर उठते ही नहीं जंगलों की तरफ, क्योंकि जंगलों से ही बेखबर हो गये है हम

न कंरोंदा है, न मकोरा हैं, न चिंरोंजी हैं, न महुआ है

लगता है जंगलों ने अपनी पहचान ही खो दी है

प्रकृति की अनमोल छटा यू बिखर जायेगी

सोचा नही था जंगलों को भी नजर लग जायेगी

अब सूरज की गर्मी और धरती की तपन में तड़पते रहते है

और सारा दोष प्रकृति पर ही मड़ते रहते है

हम इंसान है, दिमाग हमने ही पाया है

करते सब हम ही है नुकसान औरो ने भी उठया है।

Food from the forest

Sanjay Singh, Dr. P.K. Khatri and Chandrashekhar Dixit

Biodiversity Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

India is rich in biodiversity. We have history of living in harmony with nature but somewhere, in the mad rush of development, this regard for nature was lost. Natural resources are seen as source of raw material for industrial development. But still in the remote part of our country, untouched by modern civilization these values are well preserved with the tribals who are dependent upon forests for their sustenance. They understand the value of this wealth of nature and guard them enviously, our ancient wisdom remains safe in their hands. With shrinking vegetation cover and habitat fragmentation there is threat of loss of diversity and the precious biotic wealth.

Forest preceded man on earth in the course of evolution. It won't be wrong to say that forests support the life-system and are the center of the mosaic of all the life forms who are dependent on forest for fulfilling all their basic needs. Human beings are no exception; early-man was dependent on forest to meet his basic need of food and shelter. Forest has always been a source of basic life support system, like air, water, food, medicine and the list continues. It was the discovery of agriculture which enabled humans to be capable enough to grow his own food and settle in large settlements. We have developed a lot since then, but still we turn to the forest which is the storehouse of biodiversity to supplement our need. Level of dependency on forest may vary from region to region, but in one way or other we are still dependent on forests. The type and extent of forest dependence may vary from region to region. Our rural population is more dependent on forest when compared to urban population.

Collection of tubers and other edibles from forest by locals

People from forest fringe villages are dependent on forest for fuel and fodder. They also extract some NTFP (non-timber forest product) from the forest which is a source of additional income to them. But then in the farthest region of our country, the area which remains untouched by all the modern achievements, live the tribals who are still dependent on forest for sustenance. They have evolved with nature and this is reflected in their lifestyle, culture and ethical values. With the advent of several developmental schemes of government and active efforts of social-workers and non-government organization, they are now attached to mainstream. But their affection to nature and regards for it remains unchanged. Most of them have adopted agriculture and grow agricultural crops, rice being the most preferred crop and staple food they still supplement their provisions from the tuber, shoots, leaves, herbs, fruits and flowers, which are variously processed and used by tribals. The present article enlists some of the plants which have been a traditional source of food for the tribals in central India.

Buchanania lanzan

Woodfordia fruticosa

Cissus repanda

Costus speciosa

Dioscorea hispida

Gardenia latifolia

In past many workers have compiled the flora and ethnobotany of these regions. Grigson (1949) wrote about ethnobotany of Murias of Bastar. Elwin (1947) recorded a dozen native species eaten by Muria people. Elwin (1950) described the social effects of liquor among the Marias. Jain (1963) reported some preliminary observation on the ethnobotany of this area. Roy and Rao (1957) studied about the dietary habits of the Murias of Bastar.

Most of the wild plants require processing before consumption. Most of the fruits are eaten raw when they become ripe. *Gardenia latifolia* can be eaten raw. Mostly unripe fruits and flowers are cooked as vegetables. Fruits and flowers don't require processing before being cooked. Most of the *Dioscorea* spp. should be processed before consumption. The acrid content of the tubers is washed and the process is exhaustive, and it varies from species to species. Some of the edible plants are enlisted below. From the listed species more than 50 are used as vegetables. Flowers, leaves, fruits, seeds, tuber and young shoots and sometimes whole plants are used as vegetables. Fruits of 29 species are eaten, 8 species are source of nuts, 6 species are used as beverages and drinks, and grains of 4 species and oil from 3 species is used as food.

Edibles from the forest

S.No	Species	Common name	Habit	Use
1.	*Alangium salvifolium*	Ankol,Kloyemara, ulge	shrub	Fruit
2.	*Amaranthus spinosus*	Kata bahaji	Herb	Leaves cooked as vegetable
3.	*Anthocephalus cadamba*	Kadam, kareka	Tree	Fruit
4.	*Antidesma diandrum*	Avali, havali	Herb	Leaves cooked with gram flour
5.	*Arisaema tortuosum*	Kavrakanda, olagadda	Herb	Tuber cooked and eaten

S.No	Species	Common name	Habit	Use
6.	*Bauhinia malabarica*	Amta dhondera, pirpl, dondermara, seheda	Small tree	Bark used to improve quality of sulphi (caryota urens)
7.	*Bauhinia purpurea*	Bhondhar, kachnar, kodel, koilaribhaji	Tree	Young leaves and flowers cooked as vegetables
8.	*Bauhinia vahli*	Koya, pour, pavor, siadi, siali	Climber	The fruits are roasted to extract seeds and seeds are eaten
9.	*Boerhavia repanda*	Handithomgde, pandekusir	Herb	Leaves as vegetable
10.	*Borassus flabellifer*	Tad	Tree	The pulp of the fruit is eaten after roasting
11.	*Bridelia montana*	Litijhad	Pancoga	The ripe black fruits are eaten
12.	*Buchanania augustifolia*	Char, tole morli	Tre	The fruits are eaten
13.	*Buchanania lanzan*	Achar, car, edka, morlicettu, reka	Tree	The fruits are eaten
14.	*Carissa opaca*	Karonda, karond	Shrub	Ripe fruits eaten
15.	*Carota urens*	Palmae	Tree	The sap is fermented to prepare wine salphi
16.	*Casearia graveolens*	Kirchi	Tree	The seeds yield an edible oil ripe fruits are eaten
17.	*Cassia fistula*	Amaltas, Jhagdua	Tree	Flowers used as vegetable
18.	*Cassia occidentalis*	Cecenda koretemtem, tagres	Shrub	Decotation of seeds is used as drink
19.	*Cassia tora*	Corota, etkusir	Shrub	Leaves are cooked and eaten as vegetable
20.	*Celastrus paniculata*	Manotige, papdo, peng, vadangul	Cimber	Fruit and flowers eaten as vegetables by different tribes
21.	*Celosia argentea*	Phulbhaji, siliari	Herb	The tender leaves are cooked
22.	*Cheliocostus speciosa*	Besemati, keukanda	Shrub	Tubers are cooked and eaten
23.	*Chenopodium album*	Bathua	Herb	Leaves cooked as vegetables
24.	*Chlorophytum arundinaceum*	Karauli, koiljad	Herb	The leaves and flowers as vegetables
25.	*Cissus repanda*	Panilaha	Climber	Tribals drink the watery sap of plant
26.	*Cleome viscosa*	Hurhur	Herb	Leaves used as vegetable
27.	*Coccinia grandis*	Kundru	Climber	Green fruits cooked as vegetable
28.	*Cocculus hirsutus*	Duserkuda	Climber	Leaves are cooked as vegetables
29.	*Coix lacryma-jobi*	Kasa	Tall grass	Grains eaten as cereal
30.	*Colocasia esculenta*	Arvi	Herb	Leaves boiled and used as vegetable
31.	*Combretum nanum*	Bhuidaudi, vatmangi, dudhbel	Under shrub	The seeds are eaten

S.No	Species	Common name	Habit	Use
32.	*Cordia dichotoma*	Bohar	Tree	The leaves are eaten as vegetable, fruits are also edible
33.	*Cryptocoryne retrospiralis*	Chimlikuda, emel,	Herb	Used as vegetable
34.	*Curcuma angustifolia*	Besegadda, tikhur	Herb	Tubers are processed and eaten
35.	*Dendrocalamus strictus*	Dongribans, narbans,	Bamboo	Young shoots are eaten
36.	*Dillenia pentagyna*	Karmatta, michi, rauli	Tree	Young and ripe fruits are eaten after cooking
37.	*Dioscorea bulbifera*	Kangkanda, lathikanda	Climber	Tubers are eaten after processing
38.	*Dioscorea hamiltonii*	Nagarkanda, rasamating	Climber	Tubers are eaten after precessing
39.	*Dioscorea hispida*	Baichandi, kulia papad, chenegadda, kaimulkanda, kaimulmati, keykamat	Climber	The tubers are eaten after processing's
40.	*Dioscorea oppositifolia*	Kaksmati, kirinjmati, taksmati, kamraj, tagariyakand	Climber	Tubers are eaten after processing
41.	*Dioscorea pentaphylla*	Barahakanda, suarkanda	Climber	The tubers are eaten after processing
42.	*Dioscorea pubera*	Kosakanda, kotasmati	Climber	The tubers are edible after processing
43.	*Dioscorea wallichi*	Pithkanda, pitakana, pupudmati	Climber	The tubers are edible after processing
44.	*Diospyros melanoxylon*	Tendu, tumirmara	Tree	The fruits are edible
45.	*Diospyros peregrina*	Gandphanas, makadtendu, tirkakaya,	Tree	The fruits are edible
46.	*Emblica officinalis*	Isurkaya, nilli	Tree	Fruits are edible
47.	*Euphorbia elegans*	Daiyapjada, mukeljaba, phalodi	Herb	Whole plant as vegetable
48.	*Euphorbia prostrata*	Dudheli	Herb	Whole plant as vegetable
49.	*Feronia indica*	Kaitha	Tree	Fruits eaten
50.	*Ficus glomerata*	Dumar, gular	Tree	The ripe fruits are eaten
51.	*Ficus semicordata*	Ader, hurrepal, yerandwal	Tree	Ripe fruits are eaten
52.	*Flacourtia indica*	Kakai, kattai, mudvedma	Tree	Fruits are eaten
53.	*Gardenia gummifera*	Kullu, kurlu, kuru, sintametu, vidgu	Small Tree	Ripe fruits and seeds are eaten
54.	*Gardenia latifolia*	Pakhnakurlu, papda	Small tree	Very young fruits are eaten
55.	*Gmelina arborea*	Kurasmara, kursi, sivna	Tree	Rind of fruits are boiled and eaten
56.	*Grewia abutiliafolia*	Baisadin	Shrub	Ripe fruit are eaten
57.	*Grewia hirsuta*	Gudsukri, ghatui, iklum, kukardim, naikarking, naikarkum	Shrub	Fruits are eaten

S.No	Species	Common name	Habit	Use
58.	*Grewia tilaefolia*	Dhaman, khela, tallacettu,	Tree	Young leaves as vegetable and bark to curdle milk
59.	*Hibiscus citrinius*	kumdakanda	Tall herb	Roots are edible after boiling or frying
60.	*Hibiscus rugosus*	Dhokrakanda, guppadmate, niakhenda	Under shrub	Roots edible after boiling
61.	*Holarrhena pubescens*	Kuda	Tree	Flowers and fruits are used as vegetable
62.	*Hymenodictypn excelsum*	Bonrsal, guppudmaram, mac, minaborder	Tree	Leaves are cooked as vegetable
63.	*Indigofera pulchella*	Ghirel, jhiler, velva, jivla, kandicettu	Shrub	Flowers are cooked and eaten as vegetable
64.	*Ipoema aquatica*	Amendka, pandratonds, tondaijaba, pannejabe	Creepeer	Leaves are eaten as vegetables
65.	*Leea macrophylla*	Dhotelakand, hatphan	Shrub	Fruits are eaten
66.	*Leucas aspera*	Gubibuta, Guma	Herb	Leaves cooked as vegetable
67.	*Madhuca indica*	Mahua	Tree	Flowers cooked as vegetable Seeds yield an edible oil, Liquor is largely distilled from the flowers
68.	*Mangifera indica*	Aam	Tree	Fruits are largely eaten, Stones provide an edible flour stones powder mixed with rice and made into a Pej.
69.	*Menilkara hexandra*	Palacettu, Khirni	Tree	Ripe fruits are eaten
70.	*Merremia umbellata*	Panditonde, Musakani	Creeper	Young leaves cooked with rice and eaten
71.	*Moringa oleifera*	Munga, sehjan	Tree	Flowers cooked as vegetable, fruits and leaves are also edible
72.	*Oroxylum indicum*	Phaphni, Sonpadar	Tree	Seeds pounded into flour and eaten
73.	*Oxalis corniculata*	Amrul	Herb	Leaves used as vegetable
74.	*Peucedanum dhana*	Tejraj	Herb	Seeds used as condiment
75.	*Phoenix humilis*	Chhind	Shrub	Ripe fruits eaten
76.	*Pithecellobium dulci*	Jangli jalei, daccan imli	Tree	Aril of the fruits eaten
77.	*Plesmonium margaretiferum*	Dhui	Herb	Stem and leaves are edible
78.	*Polygonum glabrum*	Jabba, Mosalgadda	Herb	Whole plant cooked as vegetable and eaten with Pej
79.	*Polygonum plebeium*	Catibhaji	Herb	Whole plant cooked as vegetable
80.	*Portulaca oleracea*	Nonia bhaji	Herb	Whole plant cooked as vegetable
81.	*Sacciolepis interrupta*	Hathilid	Grass	Seeds eaten as grain

S.No	Species	Common name	Habit	Use
82.	*Schleichera oleosa*	Kosamb, Kusum	Tree	Fruits are eaten
83.	*Semecarpus anacardium*	Bhelva	Tree	Fruits roasted and eaten
84.	*Shorea robusta*	Sal	Tree	Young green leaves used as vegetable
85.	*Smilax prolifera*	Phomsar, Ramdatun	Climber	Young fruits cooked as vegetable
86.	*Smithia conferta*	Citalboti, Titalboti	Herb	Used as vegetable
87.	*Solanum surattense*	Mulkasettu, Remgahapa	Shrub	Fruits pulp used as vegetable
88.	*Sphaeranthus indicus*	Lambapul, Gorakhmundi	Herb	Leaves used as vegetable
89.	*Spondias pinnata*	Amda, Amodi,	Tree	Fruits are eaten
90.	*Sterculia urens*	Kulu, Karat	Tree	Fruits used as vegetable
91.	*Syzygium cumini*	Jamun, Nendi	Tree	Fruits are eaten
92.	*Tacca pinnatifida*	Surankanda, Sirdikanda	Shrub	Tubers are largely eaten and sold in market
93.	*Tamarindus indica*	Imli, Hita	Tree	Fruits are eaten, pulp sold in market,
94.	*Taraxacum officinale*	Baran	Herb	Leaves and root used as vegetable
95.	*Ventilago calyculata*	Kevti	Climber	Seeds yield an edible oil
96.	*Vicia hirsuta*	Churingli	Herb	Leaves used as vegetable
97.	*Woodfordia fruticosa*	Dhavai, dual	Shrub	Flowers used as vegetable
98.	*Xylia xylocarpa*	Tamgan, Kadai	Tree	Seeds of ripe fruits are eaten
99.	*Zizyphus mauritiana*	Ber, Remga	Shrub or Tree	Fruits are commonly eaten
100.	*Zizyphus oenoplia*	Makora, Katakuli	Climbing shrub	Ripe fruits are eaten
101.	*Zizyphus rugosa*	Toran, Ude	Shrub or Tree	Ripe fruits are eaten

Forest is source of food to the tribals, who still collect root, shoots, fruits, flowers and other forest produce, as supplement to their main diet. Most of the tribal communities are now engaged in agriculture and largely dependent on agriculture produce for food. However, this traditional knowledge is worth documentation as bio-cultural heritage. The cultural and ethical belief of our tribal people, their tremendous regard and respect for nature and the traditional methods for sustainable harvesting of the forest produce is praiseworthy and worth following. In the coming issues we would discuss processing and uses of each species in detail.

सागौन के बीजोत्पादन को प्रभावित करनेवाले कीट, फफूँद एवं उनका प्रबंधन

डॉ. वी. एस. डडवाल एवं डॉ. पी. बी. मेश्राम

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

उन्नत किस्म के बीजों के उत्पादन के लिये मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं महाराष्ट्र के वन विभागों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में सागौन के बीजोद्यान लगाये गये है । जिससे उन्नत बीजोत्पादन में सहायता मिल सके । किंतु यह देखा गया है कि पन्द्रह साल या उससे अधिक आयु के बीजोद्यानों में बीजों का उत्पादन उतना नहीं हो रहा जितनी की इन क्षेत्रों से अपेक्षा की जाती है । इसका मुख्य कारण वर्षा के दिनों में पुष्पक्रम, अधपके बीजों एवं पके बीजों पर कीड़ों एवं फफूंदों का संक्रमण है। जिससे बीजों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

एक अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि फल छेदक कीट जैसे पेजिड़ा साल्वेलिस, डाइकोक्रोसिस पन्कटीफेरेलिस, डाइकोक्रोसिस, पेन्डामेलिस एवं यूटेक्टोना मेकरेलिस के लार्वा बीजों के उत्पादन को कम करने में प्रमुख भूमिका निभाते है । साथ ही साथ कुछ फफूँद जैसे फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम, फ्यूजेरियम पेलिडोरोसियम एवं फ्यूजेरियम मोनिलिफारमी भी बीजोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है । जिससे सागौन के बीजोद्यानों में बीजों का उत्पादन स्तर गिर जाता है एंव यह बीजोद्यान अपने उद्देश्यों की पूर्ती में असफल प्रतीत हो रहे है ।

सागौन के बीजोत्पादन को प्रभावित करनेवाले प्रमुख कीट, उनके लार्वा एवं फफूँद

चित्र–1 यूटेक्टोना मेकेरेलिस कीट के लार्वा ; चित्र–2 यूटेक्टोना मेकेरेलिस के पूर्ण विकसित कीट ; चित्र–3 पेजिडा साल्वेलिस के लार्वा द्वारा क्षतिग्रस्त सागौन के फल ; चित्र–4 पेजिडा साल्वेलिस के पूर्ण विकसित कीट ; चित्र–5 डाइकोक्रोसिस पन्कटीफेरेलिस

लार्वा द्वारा क्षतिग्रस्त सागौन के अधपके फल ; चित्र–6 डाइकोक्रोसिस पन्कटीफेरेलिस का पूर्ण विकसित कीट ; चित्र–7 सागौन के बीजों में पाये जानेवाले फफॅद (फ्यूजेरियम प्रजाति)

इन कीटों एवं फफूॅदों के प्रबंधन के लिये जुलाई के अन्त में जब पुष्पक्रम में लगे सभी फूल खिल चुकते हैं उस समय पावर स्प्रे द्वारा मोनोक्रोटोफास 0.05 प्रतिशत (1.44 मी.ली. प्रतिलिटर) एवं वाविस्टिन 0.02 प्रतिशत (400 मी. ग्राम प्रतिलिटर) का पहला छिड़काव एवं दूसरा छिड़काव 10 या 12 दिन बाद करने से इन कीटों एवं फफूॅदों के संक्रमण से बीजों को बचाया जा सकता है। इन कीटनाशक एवं फफूॅद नाशक के छिड़काव द्वारा प्रयोगात्मक स्थल नांदी बीजोद्यान (सिवनी) में पूर्ण विकसित पौधों में 10–13 किलो प्रति पौधा बीजोत्पादन देखा गया है, जो कि कंट्रोल (C_7) की तुलना मे आठ गुना अधिक है ।

प्रायोगिक क्षेत्र

चित्र–1 बीजोद्यान में दवाइयों का छिडकाव ; चित्र–2 सागौन के पौधे से बीज इकटठा करते हुये ; चित्र–3 मोनोक्रोटोफास 0.05 प्रतिशत एवं वाविस्टिन 0.02 प्रतिशत द्वारा उपचारित पौधा ; चित्र–4 विभिन्न उपचारों द्वारा उत्पादित बीजों का तुलनात्मक दृश्य

सागाच्या बीजोउत्पादनाला नुकसान करणारे कीटक, बुरशी आणि त्यांचा व्यवस्थापन

डॉ. वी. एस. डडवाल एवं डॉ. पी. बी. मेश्राम

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

सुधारित प्रकारच्या बियांच्या उत्पादनाकरिता मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आणि महाराष्ट्र राज्याच्यां वन विभागा मार्फत वेगवेगळया क्षेत्रामध्ये सागांचे बीजोद्यान लावलेले आहेत. ज्यापासुन सुधारीत बीजोत्पादन मिळु शकते परन्तु हे पाहाण्यात आले आहे की पंद्राह वर्ष किंवा त्यापेक्षा अधिक वयाच्या बीजोद्याना मध्ये बियांचा उत्पादन तेवढ़ा होत नाही जेवढ़ा या क्षेत्रा पासुन अपेक्षा केली होती. याला मुख्य कारण पावसाळयात पुष्पक्रम, अर्ध्य पिकलेल्या बियां आणि पिकलेल्या बियांवर कीटकांचा आणि बुरशीचा आकमण दिसतो, त्यामुळे बियांच्या उत्पादनावर प्रतिकूल प्रभाव पड़लेला असतो.

एका अभ्यासानुसार हे पाहिलेले आहे की फल छिद्रक कीटक जसे *पॅजीडा साल्वेलिस, डायकोक्रोसीस पन्कटिफेरालीस, डायकोक्रोसीस पेन्डामेलीस* आणि पर्ण सांगाडी, *युटेक्टोना मॅकीरेलीस* च्या अळया बियांच्या उत्पादनाला कमी करण्यामध्ये प्रमुख भूमिका निभवणारे आहेत. याबरोबर काही बुरशी जसे *फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम, फ्यूजेरियम पेलीडोरोसीयम,* आणि *फ्यूजेरियम मोनीलीफारमी* पण बीजोत्पादनावर प्रतिकूल प्रभाव टाकते. त्यामुळे सागांच्या बिजोद्याना मध्ये बियांचा उत्पादन स्तर कोसळतो आणि हे बिजोद्यान आपल्या उद्देशांच्या पुर्ती मध्ये असफल प्रतीत होत आहेत.

सागाच्या बीजोउत्पादनला नुकसान करणारे प्रमुख कीटक, त्यांच्या अळया, बुरशी

चित्र 1 – *यूटेक्टोना मेकेरेलिस* कीटकांच्या अळया ; चित्र 2 – *यूटेक्टोना मेकेरेलिस* चे संपूर्ण विकसित कीटक (प्रौढ़ पतंग) ; चित्र 3 – *पेजिडा साल्वेलिस* च्या अळी द्वारा नुकसान झालेले सागाचे फळ. ; चित्र 4 – *पेजिडा साल्वेलिस* चे पूर्ण विकसित कीटक (प्रौढ़

पतंग) ; चित्र 5 – *डाइकोकोसिस पन्कटीफेरेलिस* अळी द्वारा नुकसान झालेले अपरिपक्व फळ. ; चित्र 6 – *डाइकोकोसिस पन्कटीफेरेलिस* चे संपुर्ण विकसीत कीटक (प्रौढ़ पतंग) ; चित्र 7 – सागाच्या बीयां मध्ये आढळणारया बुरशी *(फ्यूजेरियम* प्रजाति)

या कीटकांच्या आणि बुरशीच्या व्यवस्थापना करिता जुलाई महिण्याच्या शेवटी जेव्हा पुष्पक्रमात लागलेले सर्व फुले फूलायला लागतात त्यावेळेस पावर स्प्रे मार्फत मोनोक्रोटोफास 0.05 टक्के (1.44 मी.ली. प्रतिलिटर) आणि बाविस्टिन 0.02 टक्के (400 मी. ग्राम प्रतिलिटर) ची पहिली फवारणी आणि दुसरी फवारणी 10 या 12 दिवसानंतर केल्याने या कीटकांच्या आणि बुरशीचा संक्रमणा पासुन बियांना सुरक्षित ठेवू शकता येते. (T_3) या कीटनाशक आणि बुरशी नाशकच्या फवारणी मार्फत प्रयोगात्मक स्थळी बीजोद्यान (सिवनी) मध्ये पुर्ण विकसीत झाडामध्ये 10–13 किलो प्रति झाड़ बिजोत्पादन पाहिलेले आहे, जे कंट्रोल (T_7) च्या तुलनेत आठ गुना जास्त आहेत.

प्रयोगात्मक क्षेत्र

चित्र 1 – बीजोद्यान मध्ये औषधीची फवारणी ; चित्र 2 – सागाच्या झाडापासुन बियां जमा करतांना ; चित्र 3 – मोनोक्रोटोफास 0.05 टक्के आणि बाविस्टिन 0.02 टक्के मार्फत उपचारित झाड ; चित्र 4 – वेगवेगळया उपचारा मार्फत उत्पादित बियांचा तुलनात्मक दृश्य

जैविक खाद (जैव उर्वरक)

अविरल असैया
वानिकी अनुसन्धान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिंदवाडा

मिट्टी में स्थित जैव और कार्बनिक पदार्थ :

मिट्टी में अनेक जीवाणुए कीटाणु और जीवजंतु पाए जाते है, जो अनेक रासायनिक अभिक्रियाएँ संपन्न कर मिट्टी के गुण में परिवर्तन करते हैं। ये है: (क) सूक्ष्म जंतुसमूह (microfauna), जैसे प्रोटोजोआ (protozoa), सूत्रकृमि (nematodes) तथा अन्य कृमि कीट इत्यादि, (ख)सूक्ष्म वनस्पतिसमूह (microflora) जैसे काई या शैवाल (algae), डायटम (diatom), कवक, (fungi) ऐक्टिनोमाइसीज (actinomyces) आदि, (ग) जीवाणु (bacteria), जिनमें स्वजीवी (autotropic), नाइट्रीकारी, गंधककारी, लौह, परजीवी (heterotrophic), सहजीवी (symbiotic) स्वतंत्रजीवी, वातजीवी, ऐजोटोबैक्टर (azotobacter), अवातजीवी अमोनीकारक तथा सेलुलोज उत्पादक सम्मिलित है, (घ) कीटों में कृंतक (rodent), इंसेक्टिवोरा, मिलिपीड (millipede), सो बग (sow bugs), माइट्स (mites), घोघा, सितुआ शतपद, (centipedes), मकड़ी और केचुआ हैं। मिट्टी मे जीवाणुओं का स्थान बड़े महत्व का है। इनसे मिट्टी के भौतिकगुण बदलते हैं और उसकी उर्वरता बढ़ती है।

मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढाने में जैव उर्वरकों का महत्व :

रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उपज में वृद्धि तो होती है परन्तू अधिक प्रयोग से मृदा की उर्वरता तथा संरचना पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है इसलिए रासायनिक उर्वरकों (Chemical fertilizers) के साथ साथ जैव उर्वरकों)Bio-fertilizers) के प्रयोग की सम्भावनाएं बढ रही हैं।

जैव उर्वरकों के प्रयोग से फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति होने के साथ मृदा उर्वरता भी स्थिर बनी रहती है। जैव उर्वकों का प्रयोग रासायनिक उर्वरकों के साथ करने से रासायनिक उर्वकों की क्षमता बढती है जिससे उपज में वृद्धि होती है।

जैव उर्वक क्या हैं: जैव उर्वरक जीवणू खाद है। खाद मे मौजूद लाभकारी सुक्ष्म जीवाणू वायूमण्डल मे पहले से विद्धमान नाईट्रोजन को पकडकर फसल को उपलब्ध कराते हैं और मिट्टी में मौजूद अघुलनशील फास्फोरस(insolulable phosphorus) को पानी में घुलनशील बनाकर पौधों को देते हैं। इस प्रकार रासायनिक खाद की आवश्यकता सीमित हो जाती है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि जैविक खाद के प्रयोग से 30 से 40 किलो ग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर भूमि को प्राप्त हो जाती है तथा उपज 10 से 20 प्रतिशत तक बढ जाती है।

जैव उर्वरक	उपयुक्त फसलें	संस्तुत प्रयोग विधि	आवश्यक मात्रा
राइजोबियम Rhizobium	सभी दलहनी (pulses) फसलो के लिए	बीजोपचार	200 ग्राम प्रति 10-15 किग्रा बीज
एजोटोबैक्टर Azotobactor	दलहनी फसलो को छोडकर अन्य सभी फसलों के लिए	बीजोपचार, जड उपचार, व मृदा उपचार	200 ग्राम प्रति 10-15 किग्रा बीज या 5 किग्रा प्रति हैक्टेयर
एजोस्पिरिलम Azospirilum	दलहनी फसलो को छोडकर अन्य सभी फसलों के लिए, गन्ने के लिए विशेष उपयोगी	बीजोपचार, जड उपचार, व मृदा उपचार	200 ग्राम प्रति 10-15 किग्रा बीज या 5 किग्रा प्रति हैक्टेयर
फौसफोबैक्टीरिया phosphobacteria	सभी फसलों के लिए	बीजोपचार, जड उपचार, व मृदा उपचार	200 ग्राम प्रति 10-15 किग्रा बीज या 5 किग्रा प्रति हैक्टेयर

जीवा – अमृत :

जीवा अमृत यह मिटटी एवं पौधों को पोषण देने वाल जैविक द्रव्य है। इसके इस्तेमाल से मिटटी कि उर्वरक क्षमता बढती है तथा पौधों/फसल के उपज में वृधि होती है। इसे घर पर आसानी से बनाया जा सकता है। बनाने कि विधि निम्नानुसार है:

आवश्यक सामग्री:

1 100 लीटर पानी
2 200 लीटर क्षमता का ड्रम
3 5 किलो देसी गाय का गोबर
4 5 लीटर गौमूत्र
5 1 किलो गुड
6 1 किलो बेसन
7 एक मुठ्ठी खेत कि मिट्टी (रासायनिक खाद न डाली हो)

विधि:

1 ड्रम में 100 लीटर पानी लेकर सारी सामग्री घोल ले। मिश्रण को दिन में तीन बार हिलाए। 48 घंटे उपरांत यह मिश्रण तैयार हो जायेगा । इसे ही जीवा अमृत कहते है।

उपयोग विधि:

1 फसलों कि सिंचाई 10 प्रतिशत जीवा अमृत सिंचाई वाले पानी में मिलकर सिंचाई करे।
2 10 प्रतिशत जीवा अमृत घोल सीधे पौधों को भी दे सकते है। 1 लीटर प्रति पौधा।
3 प्रत्येक सिंचाई में जीवा अमृत मिला कर सिंचन अत्यंत लाभकारी होता है।

जैव उर्वकों से लाभ:

ये अन्य रासायनिक उर्वकों से सस्ते होते हैं जिससे फसल उत्पादन की लागत घटती है। जैव उर्वरकों के प्रयोग से नाईट्रोजन व घुलनशील फास्फोरस की फसल के लिए उपलब्धता बढतीहैं। इससे रासायनिक खाद का प्रयोग कम हो जाता है। जैविक खाद से पौधों मे वृद्धिकारक हारमोन्स उत्पन्न होते हैं जिनसे उनकी की बढवार पर अच्छा प्रभाव पडता है। जैविक खाद से फसल में मृदाजन्य रोगों नही होते। जैविक खाद से खेत मे लाभकारी शुक्ष्म जीवों (micro organism) की संख्या मे बढोतरी होती है। जैविक खाद से पर्यावरण सुरक्षित रहता है।

जैविक खाद का प्रयोग कैसे करें :

जैव उर्वरकों का प्रयोग बीजोपचार या जड उपचार अथवा मृदा उपचार द्वारा किया जाता है।

बीजोपचार:

1. 200 ग्राम जैव उर्वरक का आधा लिटर पानी में घोल बनाएं।

2. इस घोल को 10-15 किलो बीज के ढेर पर धीरे-कि जैव उर्वरक अच्छी धीरे डालकर हाथों से मिलाएं जिससे तरह और समान रूप से बीजों पर चिपक जाऐ ।

3. इस प्रकार तैयार उपचारित बीज को छाया में सुखाकर तुरन्त बुआई कर दें।

जड उपचार:

1. जैविक खाद का जडोपचार द्वारा प्रयोग रोपाई वाली फसलों मे करते हैं।

2. 4 किलोग्राम जैव उर्वरक का 20-25 लीटर पानी में घोल बनाऐं।

3. एक हैक्टेयर के लिए पर्याप्त पौध की जडों को 25-30 मिनट तक उपरोक्त घोल में डुबोकर रखें।

4. उपचारित पौध को छांया में रखे तथा यथाशीघ्र रोपाई कर दें।

मृदा उपचार:

1. एक हैक्टेयर भूमि के लिए, 200 ग्राम वाले 25 पैकेट जैविक खाद की आवश्यकता पडती है।

2. 50 किलोग्राम मिट्टी 50 किलोग्राम कम्पोस्ट खाद मे 5 किलोग्राम जैव उर्वरक कोअच्छी तरह मिलाऐं।

3. इस मिश्रण को एक हैक्टेयर क्षेत्रफल मे बुआई के समय या बुआई से 24 घंटे पहले समान रूप से छिडकें। इसे बुआई के समय कूंडो या खूडो में भी डाल सकते हैं।

ध्यान रखें कि :

नाईट्रोजनी जैव उर्वरकों के साथ फास्फोबैक्टीरिया का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है। प्रत्येक दलहनी फसल के लिए अलग राईजोबियम कल्चर आता है अत:दलहनी फसल के अनुरूप ही राईजोबियम कल्चर ख़रीदे। जैव उर्वरकों को धूंप में कभी ना रखें। कुछ दिनों के लिए रखना हो तो मिट्टी के घडे का प्रयोग बहुत अच्छा है। फसल विशेष के अनुसार ही जैविक खाद का चुनाव करें। रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाईयों से जैविक खाद को दूर रखें तथा इनका एक साथ प्रयोग भी ना करें।

कहां से लें:

जैव उर्वरकों के तैयार पैकेट खाद विक्रेताओं, किसान सेवा केन्द्रो एवं सहकारी समितियों से प्राप्त किये जा सकते हैं।

आभार: निदेशक वानिकी अनुसन्धान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र छिंदवाडा के सतत उत्साहवर्धन हेतु आभार । अन्य स्त्रोत से संकलित

Forests for Tribals

Swaran lata and Nidhi Mehta

Biodiversity Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

India is the home of large number of indigenous tribes, who are still untouched by the lifestyle of this modern world. These tribal people have their own culture, tradition, language and lifestyle. Insight into their lifestyle reveals a strong sense of oneness with the environment which will help in designing appropriate strategies for conservation of environment on a regional and global scale.

Himachal Pradesh the land of snowy mountains, known for its natural beauty, endowed with vast forests and rivers is also home of more than 8 different indigenous communities. It lies in the Western Himalayas between 30^0 22' to 33^0 12' North latitudes and 75^0 47' to 79^0 04' East longitude and has 12 districts namely Bilaspur, Chamba, Hamirpur, Kangra, Kinnaur, Sirmaur, Kullu, Lahaul & Spiti, Mandi, Shimla, Solan and Una. The state of Himachal Pradesh is inhabited by tribal and tribal (rural) communities predominantly Gaddi, Gujjar, Kinnaura, Bhot, Swangla, Lahaula, Pangwal. The tribes like Kinnaura, Bhot, Swangla, Lahaula, Pangwal are permanent settlers and practice farming and goat and sheep rearing. Among these Gujjar are nomadic tribes, whereas Gaddis are migratory pastoralists. The wide range of altitudinal and climatic variation play an important role in creating rich forest diversity. Forest has always played a vital role in enhancing socioeconomic and cultural life of these tribals, developing a symbiotic relationship, providing security, harmony and trust since centuries. These forests cultured deep rooted traditions and sentiments of a tribal community, providing all the basic needs for survival like food, medicines, resins, gum, dye, spices fuel wood, wood for construction of houses, fodder, grazing lands, etc throughout their entire life.

The ethno-botanical, socio-economic, cultural and aesthetical values of these forests are abundant. Some of their uses can be enlisted as:

Timber: Most of the conifers like *Cedrus deodara, Pinus roxburghii, Pinus wallichiana, Picea smithiana, Abies spectablis* provide timber for furnitures, decorative/handicraft items, sculptures, construction purposes etc.

Fuel : *Cedrus deodara, Pinus wallichiana, Pinus roxburghii, Quercus leucotrichophora, Quercus semicarpifolia, Quecus bloot, Salix wallichiana, Rhododendron arborium, Prunus armeanica, Juglens regia, Elegnus parviflora, Berberis aristata, Berbaris vulgaris* are the major source of fuel wood.

Edible species: Fruits of *Elaeagnus parviflora, Ficus palmata, Fragaria nubicola*, *Duchesnea indica, Prinsepia utilis, Prunus armeniaca, Prunus avium, Prunus prostrata, Ribes alpestre, Ribes oriantale, Rosa eglenteria, Rubus ellipticus, Rubus hoffmeisterious, Rubus fruticosus, Prunus cornuta*, *Viburnum cotinifolium* are edible and used for preparation of jams and jellies. Certain plant species *Allaria petiolata, Nusturtium officianalis, Urtica dioica* are used for preparation of special cuisines. Mushrooms having high nutritive value like *Lactarius deliciosus, Humaria hemisphaeria, Cantharellus cibarius, Morchella esculenta*, *Agaricus* spp., *Bolitus* spp. are consumed by local people.

Rubus fruticosus

Ficus auriculata

Berberis lyceum

Duchesnea indica

Morchella esculenta

Nusturtium officianalis

Seed of *Pinus gerardiana, Bunium persicum, Carum carvi, Abrus precatorious* and wild edible mushrooms *Morchella esculenta* is collected and sold in market commercially.

Oil yielding species: Oil extracted from seeds of wild variety of *Juglans regia, Prunus armeniaca, Prunus amagdalus* and *Pinus gerardiana* are cused for cooking.

Spices and Condiments: These are extracted from *Bunium percicum, Carum carvi, Cinnamomum tamala, Hedychium spicatum*.

Medicines: Plants have been used for treatment of various diseases since time immemorial. Local doctors known as "Amchii" generally prescribe medicines of herbal origin. Many exclusive medicinal plants are collected and sold to different pharmaceutical industries.

Commonly used species for treatment of various ailments

Aconitum heterophyllum	*Hyoscyamus niger*	*Rubus hoffmeisterious*
Aconitum violacium	*Hyssophus officianalis*	*Rumex dentatus*
Allium carolinianum	*Meconopsis aculeata*	*Rumex hastatus*
Arctium lappa	*Mentha longifolia*	*Salvia lanata*
Arnebia euchroma	*Nicandra physaloides*	*Salvia moorcroftiana*
Artemisia dracunculus	*Nicotiana tobaccum*	*Saussurea costus*
Artemisia maritima	*Origanum vulgare*	*Saussurea gossypiphora*
Bahunia varigata	*Oxalis corniculata*	*Saussurea obvallata*
Berbaris lycium	*Persicaria capitata*	*Solanum indicum*
Berberis vulgaris	*Physalis minima*	*Swertia chiryata*
Butea monosperma	*Picrorhiza karooa*	*Taraxacum officianalis*
Cannabis sativa	*Podophylum heterophylum*	*Terminalia bellerica*
Capparis spinosa	*Primula denticulata*	*Texus baccata*
Caltha palustris	*Rheum australe*	*Thymus linearis*
Cuscuta reflexa	*Rheum moorcroftianum*	*Urtica hyperborea*
Dactylorhiza hatagirea	*Rhododendron anthopogon*	*Urtica dioica*
Datura stramonium	*Rhododendron arborium*	*Valeriana jatamansi*
Delphenium brunonianum	*Rhododendron campanulatum*	*Verbascum thapsus*
Dioscorea deltoidea	*Ribes orientale*	*Viburnum cotinifolium*
Ephedra gerardiana	*Ribes rubrum*	*Viola betonicifolia*
Ficus bengalensis	*Ricinus communis*	*Viola biflora*
Fragaria visca	*Rosa macrophylla*	*Viola canescens*
Geranium pratense	*Rosa webbiana*	*Viola indica*
Geranium wallichianum	*Rubus ellipticus*	*Viscum album*
Hippophae rhamnoides	*Rubus fruticosus*	*Woodfordia fruticosa*

Taraxacum indicum

Caltha palustris

Viola canescens

Hyoscynamus niger

Dye yielding species: *Alnus nitida, Alnus nepalensis, Berbaris aristata Rubia manjith, Principea utilis* are used as dye yielding plants.

Species of religious importance: *Aconitum violaceum, Asparagus racemosus, Berbaris aristata, Cannabis sativa, Delphenium brunonianum, Datura stramonium, Cedrus deodara, Cynodon dactylon, Ficus religiosa, Fraxinus* spp*., Hedera helix, Jurenia macrocephala, Juniperus communis, Juniperus macropoda*, *Ocimum sanctum, Rosa macrophylla, Saussurea obvallata, Saussurea gossypiphora,* etc are some of the species of religious importance.

Saussurea obvallata

Jurenia macrocephala

Twigs of *Juniperus communis, Junipers dolomia, Juniperus macropoda*, bark of *Rhododendron anthopogon* and roots of *Jurenia macrocephala* are used as substitute of incense sticks to spread aroma and for religious purposes.

Fodder species: *Alnus nepalensis, Astragalus spp, Butea monosperma, Desmodium elegans, Desmodium gangiticum*, *Deutzia compacta, Elegnus parviflora, Ficus auriculata, Ficus pamata*, *Salix* spp., *Quercus leucotrichophora, Quercus semicarpifolia, Quecus bloot* and all the grasses are used as fodder for livestock.

Micelleneous uses: Local people make baskets from *Arundo donex, Dendrocalamus strictus, Desmodium elegans, Desmodium gangiticum, Salix wallichiana*. These baskets are used to store and translocate grains and fruits from fields to houses. *Cannabia sativa,* a type of herb is used to make ropes, while the needles of *Pinus wallichiana* is used for making brooms used by the local people.

Other species used for making household equipments are *Alnus nepalensis, Alnus nitida, Acer acuminatum, Acer sterculiaceum, Juglans regia, Melia azedarach, Populus cillata, Populus nigra, Quercus baloot, Quercus leucotrichophora* etc. *Pinus roxburghii* is the major source of resin which is used in making paints and varnishes. Seeds of *Pinus gerardiana* are used for making garlands to welcome guests and *Oroxylum indicum* is used to decorate the bridal cap during marriages.

Although tribals play major role in protection of their forests in natural habitats and worship due to magico-religious belief as home of god and goddess, increasing population, modernization, hydropower projects, forest fire, overgrazing, unregulated tourism, construction of roads and unscientific harvest of forest produce are major problem leading to loss of plant diversity and this invaluable natural asset. If these naturally occurring plant resources are not timely conserved then they may soon extinct leading to disappearance of rich tribal culture that breeds on them.

The better conservation of natural resources can be achieved through promotion of community based conservation stressing *in-situ* conservation through the establishment of nature reserves, wild life sanctuaries and *ex-situ* conservation through tissue culture and developing nurseries of medicinal plants and conducting regular trainings on the procedure of medicinal plants collection, processing amongst the local people and traders.

Similar situation exists among the indigenous communities of central India. It would therefore be essential to understand the ethno-botanical and sentimental values about the forests for tribal, not just for documentation but for formulation and implementation of suitable strategies that could help in conflict resolution and in harmonious development.

वन उत्पाद आधारित विभिन्न इकाइयॉं/उपक्रम : निवेश की सम्भावनाऍं

नीलू सिंह

अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग,

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

भारत जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध भू–खण्ड है। प्रकृति ने हमारे देश को विभिन्न वन उत्पाद व औषधीय पौधों का एक विशाल धन का भण्डार प्रदान किया है, इसलिए भारत को प्रायः 'विश्व का औषधीय उद्यान' भी माना गया है। भारतीय हर्बल तथा औषधीय परम्परागत आयुर्वेदिक प्रणाली का एक सुदृढ़ आधार को अब विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई है। भारत सरकार भी अब इन विभिन्न वन उत्पादों के उपयोग को अनेक प्रोत्साहन योजनाओं द्वारा बढ़ावा देने के लिए उत्सुक है। इस उद्योग के विशाल क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए विभिन्न वन उत्पादों, औषधीय पौधों के उत्पादकों, व्यापारियों, पूर्तिकर्ताओं एवं उद्यमियों की बड़ी भागीदारी को प्रोत्साहित किया है।

हर्बल औषधीय उद्योग का वार्षिक टर्नओवर लगभग 7500 करोड़ रूपये है जिसकी वर्ष 2015 तक दो गुना (रू.15 हजार करोड़) होने की संभावना है। विश्व के शीर्ष चैंबर का अनुमान है कि वर्ष 2015 तक वैश्विक हर्बल उद्योग 30,000 करोड़ रूपये के मौजूदा स्तर से दो गुना से अधिक लगभग 70,000 करोड़ रूपये तक बढ़ सकता है। इससे हर्बल सेक्टर में छोटे उद्यमियों के आगे बढ़ने की पूर्ण संभावना है। मध्य भारत में वन आधारित कच्चे माल का एक विशाल भंडार तथा समृद्ध संसाधन उपस्थित है और यदि घरेलू हर्बल उद्योग अंतर्राष्ट्रीय मानकों की गुणवत्ता के उत्पादों का उत्पादन करने में सक्षम हो तो यह वैश्विक हर्बल बाजार में एक प्रमुख स्थान बना सकता है।

वन उत्पाद आधारित निम्नलिखित क्षेत्रों में निवेश की अच्छी सम्भावनाऍं हैं –

- **प्राथमिक प्रसंस्करण हेतु इकाइयॉं स्थापित करना**

लघुवनोंपजों के संग्रहण से लेकर बाजार में विपणन तक अनेक प्रक्रियाओं की श्रृंखला है। इसमें संग्रहित उत्पाद के प्रसंस्करण की महत्वपूर्ण भूमिका है ताकि लघुवनोपज के भौतिक स्वरूप जैसे– रंग, रूप, आकार, सुगंध एवं उसमें विद्यमान रसायनिक तत्वों को मूल स्वरूप में रखने की समयावधि में बढ़ोत्तरी की जा सके, जिससे उसकी गुणवत्ता में सुधार हो तथा संग्राहक को उसका उचित मूल्य मिल सके।

आज विश्व स्तर पर हमारे उत्पाद का बड़ा हिस्सा निरस्त होने का मुख्य कारण उसकी गुणवत्ता में कमी होना है जिसका मुख्य कारण मुख्यतः प्राथमिक स्तर पर उत्पाद इकट्ठा होने से लेकर सुखाने में रहने वाली कमियॉं है जो कि उत्पाद की गुणवत्ता पर मुख्यतः प्रभाव डालती है। अतः सही वैज्ञानिक विधि द्वारा विभिन्न उत्पादों के प्राथमिक प्रसंस्करण हेतु इकाईयॉं स्थापित कर उद्यमी राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार कर सकते हैं। आजकल आंवला, ईसबगोल, मेंहदी, अश्वगंधा, ऐलोवेरा (घृतकुमारी) इत्यादि कच्चे माल के लिए एक मजबूत मांग है, क्योंकि इन सामग्रियों का प्रयोग आयुर्वेदिक औषध सरूपों (फॉम्यूलेशन) को तैयार करने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है।

प्रसंस्करित उत्पाद

- **सुगंधित पौधों का प्रसंस्करण एवं आसवन कर तेल निकालना**

वर्तमान समय में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुगंधित पौधों, तेलों व इनसे प्राप्त उत्पादों की मॉग बढ़ रही है। इन तेलों का प्रयोग मुख्यतः अगरबत्ती उद्योग, साबुन, हेयर आईल, इत्र, ऍरोमा थैरेपी, सौंदर्य प्रसाधनों व दवाई उद्योगों में मुख्यतः किया जाता है।

विश्व में लगभग 400 प्रकार के सुगंधित तेलों का व्यापार किया जाता है। वर्तमान में प्रदेश में पामरोजा, लेमनग्रास, सिट्रोनेला, मेन्था, मुश्कदाना, बच एवं रजनीगंधा इत्यादि की खेती प्रारंभ हो गई है।

अतः बहुत कम लागत में आवसन संयत्र लगाकर लघु व मध्यम उद्यमी लाभ कमा सकते हैं।

- **स्टार्च निष्कर्ष व उसके उत्पाद तैयार करना**

स्टार्च का प्रयोग विभिन्न उद्योगों जैसे– पेपर उद्योग, दवाई उद्योग, कपड़ा उद्योग, खाद्य उत्पादों, एडहिसिव व गुलाल बनाने में किया जाता है। सामान्यतः आलू, अरारोट, मक्का व कसावा का स्टार्च प्रयोग विभिन्न उद्योगों में किया जाता है। मध्यभारत में बहुत सी प्रजातियॉ जैसे– तीखुर, बेचॉदी, गेचीकंद, सूरन कंद इत्यादि जिनमें प्रचुर मात्रा में स्टार्च उपलब्ध हैं। जिससे हम आसानी से माण्ड या स्टार्च को निकाल सकते हैं व उन्हें विभिन्न उद्योगों में वितरित कर सकते हैं या स्वयं उत्पाद तैयार किये जा सकते हैं।

जैव एडहिसिव

स्टार्च

- **विभिन्न औषधीय पौधों से चूर्ण (पाउडर) उत्पाद तैयार करना**

विभिन्न औषधीय पौधों के चूर्ण की राष्ट्रीय बाजारों में व उद्योगों में मॉग है। कुछ मुख्य पौधे जैसे– अश्वगंधा, चूर्ण, त्रिफला, इसबगोल, सतावर, ऑवला इत्यादि के चूर्ण तैयार करने की इकाईयॉ लगाई जा सकती है।

- **औषधीय गुण वाले अर्क (सारतत्व) तैयार करना**

कृत्रिम–संश्लेषित एलोपैथिक दवाओं के सह–प्रभाव (साइड इफेक्ट) का बढ़ता अहसास, हर्बल उत्पादों के औषधीय लाभों के साथ–साथ इनके चिकित्सीय प्रभाव के बारे में बढ़ती जागरूकता के कारण भी आज दुनियाभर में हर्बल सारसतों या अर्कों, आहारी की मांग अत्यधिक बढ़ गयी है। औषधीय पौधे जैसे– हल्दी, मेथी, ऑवला, एलोवेरा इत्यादि पौधों के अर्क निकालने की इकाईयॉ लगाई जा सकती हैं।

- **हर्बल गुलाल का उत्पादन**

हमारे देश में होली व अन्य शुभ अवसरों पर गुलाल/रंगों का उपयोग किया जाता है। सामान्यतः उपयोग होने वाले कृत्रिम रंगों द्वारा त्वचा व श्वांस सम्बन्धी बीमारियॉ बहुतायत से फैल रही है। मध्यभारत के बहुत सी पादप प्रजातियॉ पाई जाती है जिनमें पलास मुख्य है। जिनका उपयोग हर्बल रंग बनाने में किया जा सकता है।

- **हर्बल आधारित सौंदर्य प्रसाधनों का निर्माण**

सौंदर्य प्रसाधनों के प्रति बढ़ते झुकाव व कृत्रिम रसायन आधारित सौंदर्य प्रसाधनों के बढ़ते दुष्परिणामों के कारण, आज हर्बल आधारित सौंदर्य प्रसाधनों की मांग में काफी वृद्धि हुई है। सौंदर्य प्रसाधनों के क्षेत्र में निवेश की अपार सम्भावनाऍ हैं। जिनमें एलोवेरा आधारित उत्पाद, हर्बल केश तेल, शैम्पू इत्यादि प्रमुख हैं।

- **औषधीय गुणों वाले फलों की प्रसंस्करण इकाइयॉ**

मध्यभारत के जंगलों में औषधीय गुणों विभिन्न फलदार प्रजातियॉ उपलब्ध हैं, जिनका संग्रहण व प्रसंस्करण जंगलों के आसपास रहने वाले आदिवासियों/रहवासियों द्वारा किया जाता है। सामान्यतः देखा गया है कि सही समय पर संग्रहण व प्रसंस्करण की जानकारी न होने के कारण हमें प्रकृति द्वारा प्राप्त उत्पाद की उचित गुणवत्ता प्राप्त नहीं हो पाती है। जिसमें बेल व ऑवला प्रमुख हैं।

बेल का प्रसंस्करण

➢ **जैव जीवनाशी व जैव उर्वरक तैयार करना**

बहुत सी पादप प्रजातियॉ उपलब्ध है जिनका प्रयोग कीटनाशक व फफूँदनाशक बनाने में किया जा सकता है। जिनमें नीम के पत्तों व बीजों से कीटनाशक तैयार करना मुख्य है। इसी प्रकार मध्यभारत में बहुत सी तैलीय बीजों की वृक्ष प्रजातियॉ जैसे– करंज, महुआ, कुसुम, जेट्रोफा इत्यादि उपलब्ध हैं जिनका उपयोग जैव उर्वरक बनाने में किया जा सकता है ।

➢ **सह उत्पाद का प्रयोग**

बहुत से अकाष्ठ वन उत्पाद या औषधीय पौधों के अनुपयोगी उत्पाद का प्रयोग विभिन्न प्रकार के उपयोगी उत्पाद बनाने में किया जा सकता है। जिनमें चारकोल निर्माण, गैस ईंधन का निर्माण, पेपर इत्यादि प्रमुख हैं।

हस्तनिर्मित पेपर

अनुपयोगी वन उत्पाद का चारकोल ईंधन बनाने में प्रयोग

कृषिवानिकी पर विश्व संगोष्ठी

डॉ. ननिता बेरी

कृषि वानिकी प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

कृषिवानिकी विषय पर तृतीय विश्व कृषिवानिकी संगोष्ठी का आयोजन 10 से 14 फरवरी, 2014 को नई दिल्ली, भारत में विश्व कृषिवानिकी संस्थान केनिया, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झॉसी (उ.प्र.) के सौजन्य से सफल आयोजन किया गया।

उक्त संगोष्ठी में मुख्यतः तीन चरण थे। संगोष्ठी के प्रथम चरण में उद्घाटन सत्र प्रथम दिन अर्थात 10 फरवरी, 2014 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित किया गया । इस अवसर पर माननीय श्री शरद पवार, कृषि व खाद्य प्रसंस्करण मंत्री, श्री एम. विरप्पा मोइली, वन एवं पर्यावरण मंत्री, श्री आशीष बहुगुणा, सचिव, कृषि मंत्रालय, डॉ. एस. अयप्पन, महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा, डॉ.टोनी सायमन, महानिदेशक, अन्तराष्ट्रीय कृषि वानिकी केन्द्र केन्या, मंचासीन थे। उद्घाटन सत्र में भारत के सात राज्यों से चुने गये उत्कृष्ट कृषक भाईयों एवं बहनों को कृषि कर्मण पुरस्कार से नवाजा गया। इस अवसर पर सातों राज्यों के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान, मध्यप्रदेश श्री बृजमोहन अग्रवाल, छत्तीसगढ़ (मुख्यमंत्री नामित), श्री नवीन पटनायक, उड़ीसा, श्री नितिश कुमार, बिहार भी उपस्थित थे।

कृषि कर्मण पुरूस्कार के लिये म.प्र. के श्री योगेन्द्र कौशिक, उज्जैन एवं श्रीमति शशि खंडेलवाल, छिंदवाड़ा, उड़ीसा के श्री प्रदीप कुमार पांडा, रायगडा एवं श्रीमति खितीसुता मिश्रा (उड़ीसा), मणिपुर से श्री अशेम प्रियोकुमार सिंह, मोरंग एवं श्रीमति अखोंगबाम विक्टोरिया देवी, इम्फाल, छत्तिसगढ़ के श्री भोलाराम साहू, धमतरी एवं श्रीमति सुशीला गावेल, जॉजगीर, बिहार के मोहम्मद जाहिद खान, समस्तीपुर एवं श्रीमति कल्पना प्रकाश, समस्तीपुर, झारखण्ड के श्री अखिलेश कुमार सिंह, लोहारडगा एवं श्रीमति दुलार किसकू, पाकड़ से, आंध्रप्रदेश के मेडक से श्री मटूर शंकर एवं श्रीमति मंचला परम्मा, विजानग्राम से पुरूस्कृत किए गए।

इसके अतिरिक्त पर्यावरण संरक्षण विषय में राष्ट्रीय कलाकृति प्रतियोगिता में कु. निहारिका, पुदुर, कोयंबटूर (तमिलनाडू) को प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इस पांच दिवसीय तृतीय विश्व कृषिवानिकी संगोष्ठी में 80 देशों के करीब 1000 से भी अधिक कृषिवानिकी वैज्ञानिक दिल्ली में इकट्ठे हुए जिसका मुख्य विषय 'वृक्ष से जीवन एवं कृषिवानिकी के प्रभाव को कृषक के खेतों पर बढ़ावा' पर चिंतन करना था। उक्त संगोष्ठी नई एवं सरल कृषिवानिकी पद्वति एवं तकनीक, कृषिवानिकी को बढ़ावा देने के लिए संस्थागत सुधार, लघु किसान के उद्योगधंधे को मजबूत एवं स्थिर बाजार एवं एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना जिसमे विकासशील देशों के साथ नेटवर्क बनाने के साथ ही शोध के बारे में जागरूक करने का प्रस्ताव था।

इस संगोष्ठी में डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन शोध के प्रमुख एवं विशिष्ट अतिथि प्रमुख वक्ता , डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन प्रसिद्व कृषि वैज्ञानिक ने अपने उद्बोधन में वृक्ष प्रजातियों जैसे मुनगा (सहजन) आंवला, एवं कंदीय फसलों पर आधारित कृषि वानिकी पर शोध के लिये विशेष आग्रह किया गया। इस अवसर पर भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के पूर्व महानिदेशक डॉ. डी.एन. तिवारी ने वनों एवं वनवासियों के चारा एवं ईंधन जैसे रोजमर्रा आवश्यकताओं सहित सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान को कृषि वानिकी में

सम्मिलित करने पर जोर दिया। पांच दिवसीय इस संगोष्ठी में कृषि वानिकी के लाभ जैसे अनुपजाउ जमीन का संरक्षण, गरीबी कम करना, बहुफसलों से कुपोषण को दूर करना, पशुओं का संरक्षण, वर्षा के बहते पानी का संरक्षण, जैवविविधता का संरक्षण, वन्य प्राणी की रक्षा एवं मिट्टी का रख–रखाव के बारे में विस्तृत से विश्व चिन्तन किया गया।

उक्त संगोष्ठी के द्वितिय चरण में प्रथम दिन के तकनीकी सत्र में विभिन्न विषयों पर चिन्तन किया गया। जैसे –

1. कृषिवानिकी पालिसी एवं वृक्ष आधारित खेती पद्वति – पर्यावरण लाभ या फायदे
2. कृषिवानिकी द्वारा ग्रामीण रोजगार एवं आय उपलब्धता।
3. कृषिवानिकी एवं शुष्कभूमि
4. कृषिवानिकी और जलवायु परिवर्तन
5. उष्ण गृहवाटिका : बहुउद्देशीय एवं लाभ
6. वृक्ष चारा और पशु पोषण

द्वितीय दिन के द्वितीय सत्र में –

1. कृषिवानिकी के प्रभाव को बढ़ावा देने उद्योगों की भूमिका
2. कृषिवानिकी में वृक्षों का समायोजन – लकड़ी पर आधारित उद्योग
3. कृषि वानिकी द्वारा पोषण सुधार
4. वृक्ष उत्पाद पर आधारित आजीविका
5. लोक–निजी गठबंधन : कृषिवानिकी उत्पाद के बाजार के लिए मूल्य संवंर्धन
6. पृथ्वी पर वृक्षों द्वारा पर्यावरण सुरक्षा का महत्व
7. कृषिवानिकी द्वारा सतत् विकास
8. कृषिवानिकी शोध में नवीनता
9. कृषिवानिकी शिक्षा और कौशल विकास
10. कृषिवानिकी का भविष्य : प्राचीन समस्या के लिए नई तकनीक
11. कृषिवानिकी पद्वतियॉ, लाभ एवं हानि का संतुलन : निवेशक के नजरिये से
12. कृषिवानिकी नीति, शासन एवं अर्न्तराष्ट्रीय ढांचा
13. कृषिवानिकी के सफल और मानक उद्योग प्रारूप
14. कृषिवानिकी पर आधारित उद्योग पर विस्तृत चर्चा

उपर्युक्तों विषयों पर विश्व के विभिन्न देशों जैसे इंडोनेशिया, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान, स्पेन, मिसोरी, पश्चिम अफ्रीका, चिली, ब्राजील, जावा, यूरोप, अमेरिका, चीन, फिलीपीस जम्बिया, कनिया, युगांडा, नाइजीरिया, उजबेकिस्तान, वियतनाम, इथोपिया, कनाडा, श्रीलंका, कास्टारिका, कोरिया, तन्जानिया कोल्मबिया, बोल्विया एवं भारत के प्रमुख शहर जबलपुर, झांसी, बैंगलोर, दिल्ली, शिमला, हैद्राबाद, जोधपुर, के विभिन्न वैज्ञानिकों ने प्रस्तुतियॉ दी ।

इन तकनीकी सत्रों के अलावा करीब 350 पोस्टर भी प्रस्तुत किए गए जिसके माध्यम से विश्व के विभिन्न वैज्ञानिकों ने कृषिवानिकी से संबंधित शोध पत्र प्रस्तुत किए । उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर के कृषि वानिकी प्रभाग के दो शोध पत्र

- बास आधारित कृषि वानिकी मॉडल एवं खमेर कृषि वानिकी मॉडल प्रस्तुत किया गया।

वर्तमान युग में सूचना एवं प्रसार तकनीक का उपयोग करके संगोष्ठी में सफल किसान व वैज्ञानिकों के कृषि वानिकी के विभिन्न मॉडल जो विश्व के किसी भी राज्यों या देशों में प्रचलित है उन पर एक प्रतियोगिता आयोजित की गई जिसके अन्तर्गत सफल तकनीक को इंटरनेट के माध्यम से उस विशेष साइट पर डाला गया जिसे अधिकतम वोटिंग के आधार एवं विशेषज्ञों के मापदण्ड पर सही पाए जाने पर पुरूस्कृत भी किया गया।

कृषि वानिकी के इस तृतीय विश्व संगोष्ठी के अन्तिम सत्र में 13 फरवरी, 2014 को विदेश मंत्री श्री सलमान खुर्शीद द्वारा विज्ञान भवन में समापन किया गया साथ ही ब्लॉग प्रतियोगिता के विजयी श्रीमति निताशा नायर को उनके पश्चिमी घाट के कोडागू में कॉफी कृषिवानिकी को प्रथम पुरूस्कार से नवाजा भी

गया। संगोष्ठी के अन्तिम दिन 14 फरवरी, 2014 को क्षेत्र भ्रमण सत्र में यमुनानगर के पॉपलर वृक्षारोपण एवं पश्चिमी घाट के कोडागू में कॉफी कृषिवानिकी के भ्रमण के साथ समाप्त किया गया।

कृषिवानिकी पर तृतीय विश्व संगोष्ठी के नए आयाम

इस संगोष्ठी के पूर्व में भी कृषि वानिकी के प्रोत्साहन पर किए गए प्रयत्न विफल हो गए थे लेकिन तृतीय विश्व संगोष्ठी में राष्ट्रीय कृषिवानिकी पालिसी बनाई गई जिसे सर्वप्रथम भारत ने लागू किया है। इस नई पॉलिसी के तहत कृषिवानिकी को नए आयाम दिया जायेगा। इससे पूर्व कृषिवानिकी, वानिकी का ही एक हिस्सा माना जाता था लेकिन अब इसे कृषि के प्रिज्म से देखा जाएगा। इस पॉलिसी के द्वारा सिकुड़ती हुई जमीन व जल स्रोतों के विपरीत किसान कृषिवानिकी के लाभ द्वारा देश की जनता की भोज्य पदार्थ, चारा, जलाऊ लकड़ी की जरूरतों को पूरा कराने में सफल होगा। संगोष्ठी में भारत ऐसा प्रथम देश है जिसने कृषि वानिकी पालिसी को स्वीकार किया।किसान सदियों से अपने खेतों में वृक्षों को लगाकर मिट्टी को स्वस्थ एवं लकड़ी, ईंधन और भोजन की आवश्यकता पूरी करता है लेकिन पिछले कुछ समय में कृषि वानिकी धीरे–धीरे कम होने लगी है जिसका मुख्य कारण शहरीकरण, औद्योगिकी विकास एवं खेत की जमीन पर भवन निर्माण इत्यादि रहा है। इस कृषि वानिकी पालिसी में कानूनी कमियों के कारण कृषि वानिकी का पूर्ण रूप से बढ़ावा नहीं मिल पा रहा है, इन खामियों को दूर करने का प्रावधान है। इस पालिसी में विभिन्न मंत्रालय जैसे कृषि, वानिकी एवं प्रशासनिक प्रभाग में सामांजस्य स्थापित करने के साथ वर्तमान में प्रचलित कार्यक्रम एवं योजना पर विचार किया जायेगा। इस पालिसी मे कृषि वानिकी मिशन या बोर्ड विभाग से संचालन किया जायेगा। इस पालिसी में कृषि एवं वानिकी से संबंधित नियमों को सरल किया जायेगा जिसमें वन, भू –राजस्व और अन्य स्थानीय निकायों के वृक्ष काटने एवं उनके परिवहन के नियमों को भी सुधारा जायेगा। इसके अलावा भू–अधिग्रहण सुरक्षा, शोध को बढ़ावा, वन्य कौशल में वृद्वि, कृषि वानिकी उपज का सफल औद्योगिककरण एवं बाजार उपलब्धता पर विशेष प्रयास किया जायेगा ।

तृतीय विश्व कृषिवानिकी संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र 10 फरवरी, 2014 विज्ञान भवन, नई दिल्ली में डॉ. डी.एन. तिवारी पूर्व महानिदेशक भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद एवं कृषिवानिकी वैज्ञानिक

तृतीय विश्व कृषिवानिकी संगोष्ठी के तकनीकी सत्र मे विशिष्ट कृषि वानिकी वैज्ञानिक, नई दिल्ली

तृतीय विश्व कृषिवानिकी संगोष्ठी में विश्व के विभिन्न वैज्ञानिको की पोस्टर प्रस्तुतियॉ

तृतीय विश्व कृषिवानिकी संगोष्ठी के तकनीकी सत्र मे विशिष्ट कृषि वानिकी वैज्ञानिक, नई दिल्ली

संगोष्ठी के तकनीकी सत्र मे संस्थान के कृषिवानिकी वैज्ञानिक की पोस्टर प्रस्तुतियॉ

संगोष्ठी के तकनीकी सत्र मे कृषि वानिकी की वैज्ञानिक पोस्टर प्रस्तुतियॉ

भारतवर्ष में अधिकतर किसान 1/2 हेक्टेयर या उससे भी कम जमीन के मालिक है जो कि वर्षा पर आधारित है। इस तरह के असिंचित खेतो में सतत् सिंचाई की कमी एवं जैवसम्पदा में कमी के कारण कृषि से संबंधित अनियमितताएं होती है। इस तरह की विपरीत स्थितियों में कृषिवानिकी ही एक मात्र उपाय है जो कि भोज्य पदार्थो की चुनौती, पोषण, उर्जा, रोजगार एवं पर्यावरण सुरक्षा प्रदान कर सकता है।

वर्तमान परिस्थितियो मे विश्व चिन्तन मे यह बात सामने आई कि भारत मे बहुमुल्य सन्साधन उब्लब्ध जिसके द्वारा कृषिवानिकी मे महिलाओ की सहभागीता व उनका कौशल विकास, कृषि वानिकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण, कृषिवानिकी शोध में नवीनता एवं कृषि वानिकी के शोध को बढ़ावा, कृषिवानिकी के सफल और मानक उद्योग प्रारूप, कृषि वानिकी उत्पाद का सफल औद्योगिककरण एवं बाजार उपलब्धता पर विशेष प्रयास करने का आग्रह किया गया।

गुलाबः व्यावसायिक महत्व एवं उन्नत कृषि

राजेश कुमार मिश्रा एवं नसीर मोहम्मद
संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

गुलाब अपनी बनावट, रंग, खुशबु, अलंकरण एवम व्यायसिक दृष्टिकोण से अतिमहत्वपूर्ण होने के कारण इसकी तुलना किसी अन्य फूल से नहीं की जा सकती है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में विभिन्न फूलों की खेती व्यावसायिक उद्देश्य से की जाती रही है। इसमें गुलाब का विशेष महत्व है। गुलाब की खेती बहुत पहले से पूरी दुनिया में की जाती है। इसकी खेती पूरे भारतवर्ष में व्यवसायिक रूप से की जाती है। विश्व में गुलाब की खेती मुख्यतः बुल्गारिया, फ्रांस, मोरक्को, तुर्की तथा भारत में की जाती है। हमारे देश में गुलाब की खेती मुख्यतः कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्रा, बिहार, पश्चिम बंगाल ,गुजरात, हरियाणा, पंजाब, जम्मू एवं कश्मीर, मध्य प्रदेश, आंध्रा प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में अधिक की जाती है।

गुलाब के फूल डाली सहित या कट फ्लावर तथा पंखुड़ी फ्लावर दोनों तरह के बाजार में व्यापारिक रूप से पाये जाते है। गुलाब की खेती देश एवं विदेश में निर्यात करने के लिए दोनों ही रूप में बहुत महत्वपूर्ण है। गुलाब को कट फ्लावर, गुलाब जल, गुलाब तेल, गुलकंद आदि के लिए उगाया जाता है।

यद्धपि इसके फूल साल भर प्राप्त होते है लेकिन जाड़े की ऋतु में उच्च गुणवत्ता वाले एवं आकार में बड़े पुष्प प्राप्त होते है इसके फूलने का मुख्य समय मार्च माह है लेकिन कम तापमान होने पर अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक अधिक संख्या में फूल आते रहते है फूलों की उत्तम पैदावार के लिए प्रचुर मात्रा में धुप व आर्द्रता वाली जलवायु उपयुक्त रहती है।

गुलाब की खेती सभी प्रकार की भूमियों में भली-भांति की जा सकती है लेकिन उचित जल निकास युक्त जीवांश पदार्थों की धनी बालुई दोमट से दोमट भूमि, जिसका पी.एच. मान ६-७.५ हो अधिक उपयुक्त मानी जाती है। गुलाब की खेती उत्तर एवं दक्षिण भारत के मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में जाड़े के दिनों में की जाती है। गुलाब हेतु दिन का तापमान 25 से 30 डिग्री सेंटीग्रेट तथा रात का तापमान 12 से 14 डिग्री सेंटीग्रेट उत्तम माना जाता है। गुलाब की खेती हेतु दोमट मिट्टी तथा अधिक कार्बनिक पदार्थ वाली होनी चाहिए।

गुलाब की मुख्यतः छै प्रकार की प्रजातियां पाई जाती है। प्रथम संकर प्रजातियां जिसमे कि क्रिमसन ग्लोरी, मिस्टर लिंकन, लवजान, अफकैनेडी, जवाहर, प्रसिडेंट, राधाकृषणन, फर्स्ट लव , पूजा, सोनिया, गंगा, टाटा सैंटानरी, आर्किड, सुपर स्टार, अमेरिकन हेरिटेज आदि है। दूसरे प्रकार कि पॉलीएन्था इसमे अंजनी, रश्मी, नर्तकी, प्रीत एवं स्वाती आदि । तीसरे प्रकार कि फ़लोरीबण्डा जैसी कि बंजारन, देहली प्रिंसेज, डिम्पल,

चन्द्रमा, सदाबहार, सोनोरा, नीलाम्बरी, करिश्मा सूर्य किरण आदि । चौथे प्रकार कि गैंडीफलोरा इसमे क्वींस, मांटेजुमा आदि । पांचवे प्रकार कि मिनीपेचर ब्यूटी क्रिकेट, रेड फ्लस, पुसकला, बेबीगोल्ड स्टार, सिल्वर टिप्स आदि और अंत में छठवे प्रकार कि लता गुलाब इसमे काक्लेट, ब्लैक बॉय, लैंड मार्क, पिंक मेराडोन, मेरीकलनील आदि पाई जाती है।

हाईब्रिड टी गुलाब का एक बड़े फूलों वाला महत्वपूर्ण वर्ग है इस वर्ग के पौधे झाड़ीनुमा लम्बे होते हैं इनकी विशेषता यह है की प्रत्येक शाखा पर एक फूल निकलता है जो अत्यंत सुन्दर होता है हालाँकि कुछ ऐसी किस्मे भी है जिनमे छोटे समूह में भी फूल उगते हैं । अधिक पाला पड़ने की स्थिति में कभी-कभी पौधे मर जाते है इस वर्ग की प्रमुख किस्मे हैं एम्बेसडर अमेरिकन प्राइड , बरांडा , डबल, डिलाईट, फ्रेंडशिप , सुपरस्टार , रक्त गंधा , क्रिमसनग्लोरी, अर्जुन, फस्टे रेड, रक्तिमा , और ग्रांडेमाला आदि | फ्लोरीबंडा वर्ग में आने वाली किस्मों के गुलाब हाइब्रिड टी किस्मों की तुलना में छोटे होते हैं और अधिक संख्या में कम लगते हैं इस वर्ग की प्रमुख किस्मे है - जम्बरा अरेबियन नाइट्स, रम्बा वर्ग , चरिया, आइसवर्ग, फर्स्ट एडिसन , लहर, बंजारन , जन्तर-मंतर , सदाबहार , प्रेमा और अरुनिमा आदि | पोलिएन्था वर्ग में आने वाली किस्मों के पौधे और फूलों का आकार हाइब्रिड डी एवं फ्लोरिबंडा वर्ग से छोटा होता है लेकिन गुच्छा आकार में फ्लोरी बंडा वर्ग से भी बड़ा होता है जैसे - चट्टीलौंन व ईको आदि छोटे आते है जो गुच्छों में लगते है एक गुच्छों में कई फूल होते है|

मिनिएचर वर्ग में आने वाली किस्मों को बेबी गुलाब, मिनी गुलाब या लघु गुलाब के नाम से जाना जाता है। इनके पौधे छोटे होते हैं जिनकी पत्तियां और और फूल दोनों ही छोटे होते हैं इन्हें गमलों में या खिड़कियों के सामने की क्यारियों में सुगमता से उगाया जा सकता है इसकी प्रमुख किस्मे हैं क्रिकी, लालीपाप, नटखट, पिक्सी, बेबीगोल्ड स्टार, बेबी मेसकेरड, क्रिको आदि |

लता गुलाब कुछ हाइब्रिड टी फ्लोरिबंडा गुलाबों की शाखाएँ लताओं की भांति बढ़ती है जिसके कारण उन्हें लता गुलाब की संज्ञा दी जाती है। इन लताओं पर लगे फूल अत्यंत सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करते है इसकी प्रमुख किस्मे हैं - कासिनो, प्रोस्पेरिटी, मार्शलनील, क्लाइबिंग, कोट टेल आदि | गुलाब की अन्य नवीनतम किस्मों में मुख्यतः पूसा गौरव , पूसा बहादुर , पूसा प्रिया , पूसा बारहमासी , पूसा वीरांगना , पूसा पीताम्बर , पूसा गरिमा, और डॉ. भरत राम आदि आते हैं।

गुलाब की खेती हेतु निर्धारित खेत को जुताई के बाद तैयार करके क्यारियों में विभक्त कर लेते है। मई-जून माह में ५०-६० से.मि. गहरे गड्डों की उचित दूरी पर खुदाई करके १०-१२ दिन के लिए खुला छोड़ देते हैं जिससे मिटटी में उपस्थित कीड़े-मकोडे फफूंदी व खरपतवार इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। क्यारियो में 30 सेंटीमीटर तक सूखी पत्तियो को डालकर खोदी गयी मिट्टी से क्यारियो को बंद कर देना चाहिए साथ ही गोबर की खाद एक महीने पहले क्यारी में डालना चाहिए। इसके बाद क्यारियो को पानी से भर देना चाहिए साथ ही दीमक के बचाव के लिए फ़ालीडाल पाउडर या कार्बोफ्यूरान 3 जी. का प्रयोग करना चाहिए। लगभग 10 से 15 दिन बाद ओठ आने पर इन्ही क्यारियो में कतार बनाते हुए पौधे व लाइन से लाइन की दूरी 30 गुणा 60 सेंटीमीटर रखी जाती है। इस दूरी पर पौधे लगाने पर फूलो की डंडी लम्बी व कटाई करने में आसानी रहती है।

गुलाब के पौधे औसतन ४५-६० से.मि. की दुरी पर लगाए जाते है लेकिन विशेष प्रजाति के अनुसार यह दूरी कुछ कम या अधिक भी हो सकती है । सामान्यत: पोलिएन्था समूह की किस्मों को ४५ से.मि. की दूरी पर जबकि मिनीएचर समूह की किस्मों को ३०-35 से. मि. की दूरी पर लगाया जाता है । व्यावसायिक किस्मो को व कट फ्लावर के लिए उगाये जाने की दशा में ६० गुणा ३० से.मि. की दूरी पर रोपाई करना उत्तम पाया गया है।

जंगली गुलाब के ऊपर टी बडिंग द्वारा इसकी पौध तैयार की जाती है। जंगली गुलाब की कलम जून- जुलाई में क्यारियो में लगभग 15 सेंटीमीटर की दूरी पर लगा दी जाती है। नवम्बर से दिसंबर तक इन कलम में टहनियां निकल आती है। इन पर से कांटे चाकू से अलग कर दिए जाते है। जनवरी में अच्छे किस्म के गुलाब से टहनी लेकर टी आकार की कलिका निकालकर जंगली गुलाब को ऊपर टी में लगाकर पालीथीन से कसकर बाँध देते है। ज्यो-ज्यो तापमान बढता है इनमे टहनी निकल आती है। जुलाई अगस्त में रोपाई के लिए पौधे तैयार हो जाते है।

सितम्बर-अक्टूबर तक पौधे की रोपाई करनी चाहिए। रोपाई करते समय ध्यान देना चाहिए कि जमीन से घास फूस हटाकर भूमि की सतह से 15 सेंटीमीटर की ऊंचाई पर पौधों की रोपाई करनी चाहिए। पौधे लगाने के बाद तुरंत सिंचाई कर देना चाहिए।

उत्तम कोटि के फूलो की पैदावार लेने हेतु छँटाई के बाद प्रति पौधा 10 किलोग्राम गोबर की खाद मिट्टी में मिलाकर सिंचाई करनी चाहिए। खाद देने के एक सप्ताह बाद जब नई कोपलें फूटने लगे तो 200 ग्राम नीम की खली 100 ग्राम हड्डी का चूरा तथा रासायनिक खाद का मिश्रण 50 ग्राम प्रति पौधा देना चाहिए। मिश्रण का अनुपात एक अनुपात दो अनुपात एक मतलब यूरिया, सुपर फास्फेट, पोटाश का होना चाहिए। गुलाब के लिए सिंचाई का प्रबंधन उत्तम होना चाहिए। आवश्यकतानुसार गर्मी में 5 से 7 दिनों के बाद तथा सर्दी में 10 से 12 दिनों के बाद सिंचाई करते रहना चाहिए।

मैदानी भागो में कटाई-छटाई हेतु अक्टूबर का दूसरा सप्ताह सर्वोत्तम होता है लेकिन उस समय वर्षा नहीं होनी चाहिए। पौधे में तीन से पांच मुख्य टहनियों को 30 से 40 सेंटीमीटर रखकर कटाई की जाती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ आँख हो वहाँ से 5 सेंटीमीटर ऊपर से कटाई करनी चाहिए। कटे हुए भाग को कवकनाशी दवाओ से जैसे कि कापर आक्सीक्लोराइड, कार्बेन्डाजिम, ब्रोडोमिश्रण या चौबटिया पेस्ट का लेप लगना आवश्यक होता है।

गुलाब में मुख्यतः पाउडरी मिल्ड्यू या खर्रा रोग, उलटा सूखा रोग लगते है। खर्रा रोग को रोकने हेतु गंधक दो ग्राम प्रति लीटर पानी में या डायनोकॉप एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में या ट्राइकोडर्मा एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव दवा अदल-बदल कर करना चाहिए। सूखा रोग की रोकथाम हेतु 50 प्रतिशत कापर आक्सीक्लोराइड को 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए जिससे सूखा रोग न लग सके।

गुलाब में अधिकांशतः माहू, दीमक एवं सल्क कीट लगते है। माहू तथा सल्क कीट के दिखाई देने पर तुरंत डाई मिथोएट 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में या मोनोक्रोटोफास 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर 2 -3 छिड़काव करना चाहिए। दीमक के नियंत्रण हेतु सिंचाई करनी चाहिए तथा फोरेट 10 जी. 3 से 4 ग्राम या फ़ालीडाल 2% धुल 10 से 15 ग्राम प्रति पौधा गुड़ाई करके भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

फूलों को दोपहर के बाद ही कुछ डंठल के साथ तेज चाकू या ब्लेड की सहायता से काटना चाहिए फूलों को काटने के बाद तुरंत उन्हें पानी से भारी बाल्टी या टब में रखकर एकत्रित करते जाते हैं। फूलों को यदि दूर के बाजार में भेजना हो या कट फ्लावर के रूप में प्रयोग करना हो तो उन्हें सख्त फूल कलिका की अवस्था में २०-२५ से.मि. लम्बे डंठल के साथ काटना चाहिए। सफ़ेद, लाल, गुलाबी रंग के फूलो की अध खुली पंखुड़ियों में जब ऊपर की पंखुड़ी नीचे की ओर मुड़ना शुरू हो जावे तब फूल काटना चाहिए। फूलो को काटते समय एक या दो पत्तियां टहनी पर छोड़ देना चाहिए जिससे पौधों की वहाँ से बढ़वार होने में कोइ परेशानी न हो सके। फूलो की कटाई करते समय किसी बर्तन में पानी साथ में रखना चाहिए जिससे फूलो को काटकर पानी तुरंत रखा जा सके। बर्तन में पानी कम से कम 10 सेंटीमीटर गहरा अवश्य होना चाहिए जिससे फूलो की डंडी पानी में डूबी रहे पानी में परिरक्षक भी मिलाते है। फूलो को कम से कम 3 घंटे पानी में रखने के बाद श्रेणीकरण के लिए निकालना चाहिए। यदि श्रेणीकरण देर

से करनी हो तो फूलो को 1 से 3 डिग्री सेंटीग्रेट तापक्रम पर शीत संग्रहागार में रखना चाहिए जिससे कि फूलो की गुणवत्ता अच्छी रह सके।

गुलाब की उपज भूमि की उर्वरा शक्ति फसल की देखरेख एवं प्रजातियों पर निर्भर करती है। फिर भी आमतौर पर लगभग 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है। गुलाब की खेती फूल प्राप्त करने की दृष्टि से एवं इससे गुलाब जल और गुलाब का तेल प्राप्त करने की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है । हमारे देश में गुलाब का उत्पादन अपनी शैशवास्था में ही है परन्तु इसमें अभी अपार संभावनाएँ हैं । समय की आवश्यकता है कि हम गुलाब के व्यावयिक महत्व को समझें एवं इसके महत्व एवं इसकी उन्नत कृषी तकनीक एवं इसके रोग नियंत्रण उपायों के प्रति जन साधारण, किसानों, व्यवसायियों को जागरुक करें जिससे वे इसकी उन्नत कृषि कर इसे एक नियमित आय का स्रोत बना कर अपने जीवन में एवं इस धरती में इसकी खुशबु महका सकें ।

Eco-friendly Plastics

Rupnarayan Sett

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

In the recent era, plastic is one of the most common and useful items of our daily lives. The plastic industry produces billions of kilograms of plastic each year for the preparation of packing materials, dining utensils, food packing, insulation, etc. it is not necessary to explain how plastic materials are used today. Now-a-days plastic is fully involved with each and every moment of our life, but none of us is aware of the disposal and degradation of these materials. Along with the biodegradation of toxic wastes such as pesticides and chlorinated hydrocarbons, disposal and degradation of solid waste-like plastic is a burning environmental problem today.

Can plastic be eco-friendly? The answer is "yes, of course". There are certain bio-based polymers – bio-plastics, which are a better substitute of synthetic petroleum based plastics. Better in the sense that bio-plastics are bio-degradable i.e., easily amenable to microbial attack.

Common plastics or synthetic plastics are petroleum based xenobiotic polymers of various types, such as – polyethylene, polypropylene, polystyrene, etc. Disposal of these plastic materials produce solid wastes – one of the major soil pollutants of the recent world. They are non-degradable and liberate green house gases on burning.

Bio-plastics are bio-based polymers, derived from renewable biomass sources, such as vegetable fats and oils, corn starch, pea starch or microbiota. They are bio-degradable substances which can break down in either anaerobic or aerobic environments depending on the way they are manufactured. Different types of bio-plastics are there:

Cellulose-based plastics: They are mainly esters of cellulose (including cellulose acetate and nitrocellulose) and their derivatives including celluloid.

Starch-based plastics: At present most widely used bio-plastic is thermoplastic starch. They occupied about 50% of the bio-plastic market. In industry, starch-based bio-plastics are often made by blending starch with bio-degradable polyesters such as poly-capro-lactone or poly-butylene adipate-co-terephthalate. These blends are compostable and so bio-degradable. Another starch-based plastic is made by blending starch with poly-eolefine. These blends are no longer bio-degradable, but produce a lower carbon footprint than petroleum based plastics.

Poly-lactic acid (PLA) plastics: Poly-lactic acid or poly-lactide (PLA) is thermoplastic aliphatic polyester derived from renewable sources such as corn starch or dextrose, tapioca roots, sugarcane, etc. It resembles conventional petrochemical-based mass plastics in its characteristics. In 2010, PLA was rated as the second most important bio-plastic of the world in respect to consumption volume.

Polylactic acid

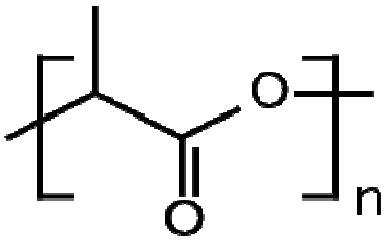

'Polylactic acid' is not a polyacid and so the name does not follow IUPAC standard nomenclature, but it is rather polyester. Due to the chiral nature of lactic acid, several distinct forms of polylactide exist. Most common are poly-L-Lactide (PLLA) and poly-L-Lactide-co-D,L-Lactide (PLDLLA). PLLA is the product resulting from polymerization of L-Lactide. It has a crystallinity of around 37%, a glass transition temperature between 60-65 ^{0}C, a melting temperature between 173 and 178 ^{0}C. Heat resistant PLA can withstand temperature of 110 ^{0}C. PLA cups cannot hold hot liquids as it has relatively low glass transition temperature. Due to its ability to degrade into lactic acid, it is used as medical implants in the form of anchors, screws, plates, pins, rods and as a mesh. Depending on the exact type used, it breaks down inside the body within 6 months to 2 years. This gradual degradation is desirable for a support structure, as it transfers the load of the body on the bones along with the healing. PLA can also be used as compostable packaging material, cups, bags, disposable table-wares.

Production of PLA (n and m are large numbers)

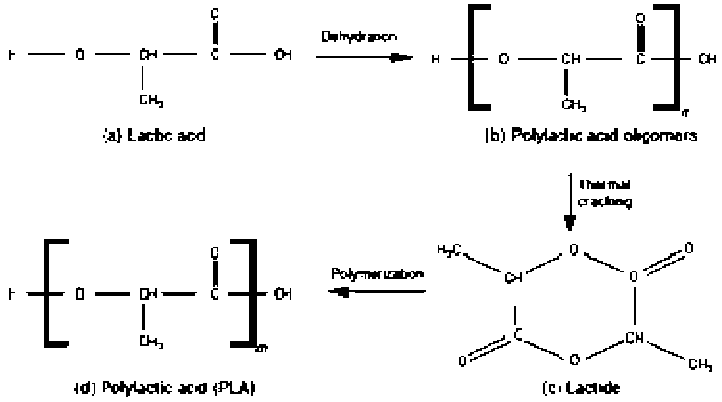

Poly-hydroxy-lalkanoates (PHA): These are bio-derived and bio-degradable linear polyesters. They are produced in nature by bacterial fermentation of sugars or lipids. PHA is more ductile and less elastic than other plastics. These plastics are being widely used in the medical industry. Probably the most common type of PHA is poly-3-hydroxy butyrate (P3HB), a form of poly hydroxyl butyrate (PHB). Other types of polymers of this class are produced by a variety of micro-organisms. These include poly-4-hydroxy butyrate (P4HB), poly hydroxyl valerate (PHV), poly hydroxyl hexanoate (PHH), poly hydroxyl octanoate (PHO) and their copolymers.

Polyhydroxybutyrate was first isolated and characterized in 1925 by French Microbiologist Maurice Lemoigne. PHB is produced by micro-organisms such as *Ralstonia eutrophus* or *Bacillus megaterium* under physiological stress condition, when nutrients are limited. The polymer is primarily a product of carbon assimilation (from glucose or starch) by microorganisms. PHB is produced as a form of energy storage molecule which they metabolize when common energy sources are not available. PHB is water insoluble and relatively resistant to hydrolytic degradation, while other currently available bio-degradable plastics are either water soluble or moisture sensitive. It has good oxygen permeability and good ultraviolet resistance. Melting point of PHB is 175^0C and glass transition temperature is 2^0C. It produces transparent film at melting point. It is non-toxic and bio-compatible and hence is suitable for medical applications. It sinks in water which facilitates its anaerobic bio-degradation in sediments.

A copolymer containing approximately equal amounts of PHB (poly-β-hydroxybutyrate) and PHV (poly-β-hydroxyvalerate), has the greatest market success so far.

Structure of copolymer of PHB and PHV

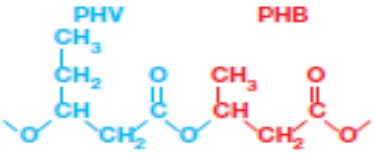

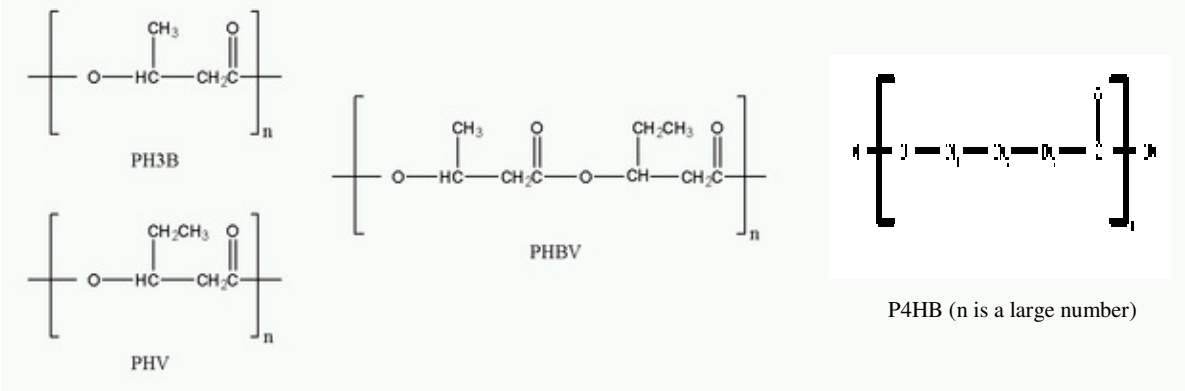

P4HB (n is a large number)

Bio-derived Polyethylene: The monomer of polyethylene is ethylene. It is produced by one small chemical step from ethanol, which is produced by fermentation of sugarcane or corn. Bio-derived polyethylene is physically and chemically identical to traditional polyethylene. It is not bio-degradable but can be recycled. It can considerably reduce greenhouse gas emissions.

Photobiodegradable plastics: These are polymers whose structure is altered by exposure to ultraviolet radiation (from sunlight), generating modified polymers amenable to microbial attack.

Environmental Impact: The production and use of bio-plastics is a more sustainable activity when compared with the plastic production from petroleum, because it relies less on fossil fuel as a carbon source and also introduces fewer net new greenhouse emission if it biodegrades. They reduce hazardous waste caused by oil-derived plastics, which remain solid for hundreds of years. However, manufacturing of bio-plastic materials is often still reliant upon petroleum as an energy and material source, although renewable energy can be used to obtain petroleum independence. It has been studied that corn-based plastics ranked higher in environmental defects than their counterparts such as synthetic based plastics by creating acidification, carcinogens, eco-toxicity, eutrophication, ozone depletion, respiratory effects and smog.

Conclusion

Although bio-plastics are bio-degradable in lesser time than petroleum based plastics, but they damage existing recycling projects. Bio-plastics are a mixed bag, and considerably more complicated than bio-fuels, mostly because there are about two dozen different ways to create bio-plastics, and everyone has different properties and capabilities. Also, because of their large number of varieties having different properties, it is almost impossible to apply right chemical in the recycling vat. It can introduce new chemicals that make the final recycled product weaker or even unusable. More research is required on the recycling methods for each type of bioplastic.

Chironji (*Buchanania lanzan* Spreng.): Save me…!

Naseer Mohammad, Fatima Shirin, Tresa Hamalton and Yogeshwar Mishra

Genetics & Plant Propagation Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Chironji (*Buchanania lanzan* Spreng), an underutilized fruit crop, assumes great significance due to its multifarious uses and capacity to withstand adverse climatic conditions. At present, it is growing under forest conditions and gives monetary reward to the tribal community of the country. It is a medium-sized deciduous tree belonging to family Anacardiaceae. It bears fruits containing a single seed, which is popular as an edible nut, known as chironji. Fruits ripen from April to May. The flesh of ripe fruit is very palatable and the oily kernels are the most important part which is used in preparation of sweets and puddings. The kernel is highly nutritious are rich in protein content (20-30%) and have high oil content (40-50%), which is used as substitute olive and almond oil. Kernel is of very high value and fetches an average of Rs. 1000-1200.00 per Kg in market.

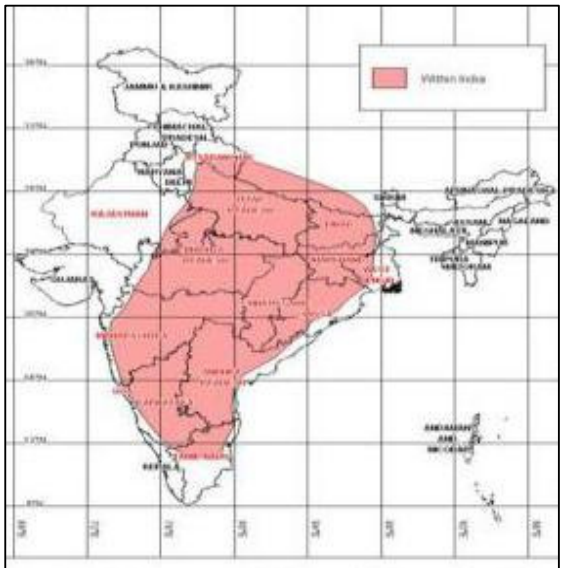

Fig: Distribution map of Chironji (*B. lanzan*) in India

Chironji originated in the Indian sub-continent. The tree is found as natural wild in the tropical deciduous forests of north, western and central India mostly in the states of Madhya Pradesh, Bihar, Orissa, Andhra Pradesh, Chhattisgarh, Jharkhand, Gujarat, Rajasthan and Maharashtra.

In the recent past, due to excessive felling of trees and unscientific exploitation, considerable reduction in the population of *B. lanzan* has been recorded. International Union for Conservation of Nature and Natural Resources (IUCN) has included *B. lanzan* is in the Red Data Book as it is vulnerable plant.

Status of Research:

At present, no cultivars or selections are identified in this important minor fruit as no organized commercial cultivation is practiced. There is an urgent need to identify superior selections /cultivars in chironji for promotion of this highly potential indigenous fruit crop.

Genetic resources of chironji have not been given due attention till now, therefore, very limited collections have been made. Accessions of chironji have been collected from Gujarat, Uttar Pradesh, Maharashtra,

Bihar, Chhattisgarh and Rajasthan by Central Horticultural Experiment Station, Godhra and Central Institute for Subtropical Horticulture. Recently, NBPGR, New Delhi have taken up specific exploration and collection missions in the diversity rich areas of Madhya Pradesh, Gujarat, Chhattisgarh and Rajasthan for the collection of chironji and 74 accessions have been collected. From Gujarat, 30 variable accessions were collected and 8 collections were found promising for important horticultural traits and are being evaluated for field performance at CHES, Godhra.

Chironji is propagated through seeds. It is reported that seed treatments (Sulphuric acid treatment, mechanical treatment through hammer) promotes seed germination. Studies were conducted on germination as influenced by different months of the year, by storing the seeds at room temperature. The results showed that seed sown in the month of August gave comparatively better performance than the seeds sown in any other month of the year. Vegetative propagation through soft wood grafting and chip budding is successful but rarely tried. *Buchanania lanzan* is considered as a very difficult to root species with poor survival and growth in the field. There are also few published reports on tissue culture (micropropagation) of chironji. Various research groups have reported multiple shoot formation and plant regeneration from seed explants.

Non-scientific exploitation has decreased the natural population of Chironji tree drastically from its natural habitat. Presently *chironji* trees are available only in the forest or marginal lands near the villages. Many of the populations have been completely wiped off in the recent past. There is an urgent need to initiate the steps for conservation as well as genetic improvement of this socio-economically important tree species.

Conservation and Improvement strategy:

It is very important to clearly define the short and long term objective by keeping in view the present and future needs.

1. Collection of germplasm and establishment of germplasm bank: Genetic resources of chironji have not been given due attention till now, therefore, very limited collections have been made. Some explorations have been carried out by CHES (CIAH), Godhra, CISH, Lucknow and NBPGR, New Delhi. It necessary to take the review of the germplasm collected by these organizations and if found necessary extensive survey and collection should be carried out under the aegis of ICFRE so that entire variability of this species can be saved. Germplasm bank should be established form the collected populations preferably at more than one location in areas suitable for chironji as

available for teak at Lohara, Chandrapur (MS).

2. To develop propagation package for selected germplasm through seeds and vegetative propagation: Less regeneration is one of the major problem in chironji. Since, seed is economically important part and get collected leaving no scope for regeneration under natural conditions. Therefore it is of prime importance to take up the activity on development of package of propagation package through seeds and vegetative means.
3. Development of agro-forestry model for Chironji: Chironji is facing severe genetic erosion as a result of activities related to afforestation in tribal inhabitated areas. Since it is economically very important crop, it is necessary to check its potential in agro forestry system and develop a suitable agro forestry model so that efforts can be made to popularize it among the farmers for incorporating it in to the agro forestry system.
4. Establish progeny trial for evaluating the performance of selected germplasm in the field
5. Establishment of SSOs and CSOs to ensure quality seed supply for operational forestry/mass multiplication
6. Development of breeding populations by undertaking hybridization programme among elite parents for extraction of transgressive segregants for seed yield

Know your Biodiversity

Swaran lata and Tresa Hamalton

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Gloriosa superba

Gloriosa superba derives its name from the word "Glorious", which means handsome and "superb" meaning splendid or majestic kind. It is the national flower of Zimbabwe and state flower of Tamilnadu. In 2004, it was adopted as official flower of the de facto rebel lands of Tamil Eelam, Sri Lanka. A postal stamp is issued by the Indian Postal Department to commemorate the flower.

Belonging to family Liliaceae, it is known as Climbing-lily, Creeping-lily, Flame-lily, Glory-lily, Gloriosa lily, Tiger claw etc. It is erect perennial, tuberous, climbing herb. The plant grows in sandy-loam soil in the mixed deciduous forests in sunny positions. It is very tolerant of nutrient-poor soils. It is also widely grown as an ornamental plant in cool temperate countries. This plant has been a source of medicine right from the ancient time. It is one of the most popular herbs due to its medicinal properties as well as its endangered status. It produces two important alkaloid clochicine and gloriosine, which are present in seeds and tubers.

This plant is poisonous, toxic enough to cause human and animal fatalities if ingested. It has been used in the treatment of gout, infertility, open wounds, snakebite, ulcer, arthritis, cholera, leprosy, bruises, cancer, impotence, smallpox, sexually transmitted diseases and internal parasites. The sap from the leaf tip is used for pimples and skin eruptions. Tribals apply the powder of rhizome with coconut oil in skin eruptions, baldness and related diseases. This combination is said to be effective in snake and scorpion bites too. It induces labour pain and performs normal delivery.

Gloriosa is a commercially imperative medicinal plant having diverse medicinal applications. Due to greater demand it is cultivated on farms but most plant material sold into the pharmaceutical trade comes from wild populations. Over-exploitation of this plant is facing major problem of local extinction. It has been affirmed as endangered plant by IUCN and hence there is a greater need to conserve the plant by *in situ* and *ex situ* multiplication so as to meet the ever increasing demand from the pharmaceutical industries. There is a greater need for a community-based approach and awareness among local community for its conservation.

Terpsiphone paradisi

The Asian Paradise Flycatcher "*Terpsiphone paradise"* is a forest-living bird species that is widely distributed in Asia. It belongs to family Monarchidae. They feed on insects, which they capture in the air often below densely canopied tree. In Singapore these birds are extinct. It is state bird of Madhya Pradesh and known as Dhudhraj. A few are migratory, but the majority are resident.

Asian Paradise Flycatchers are noisy birds uttering sharp *skreek* calls. They have short legs and sit very upright whilst perched prominently, like a shrike. They have twelve tail feathers of which the two central feathers of adult males are greatly elongated and form streamers. There are two colour types in males, rufous and white. Some rufous-coloured males do not have long central tail feathers. Therefore three types of males i.e. white-coloured male with long tail, rufous-coloured male with long tail, and rufous-coloured male with short tail exist in the same population. Females are rufous-coloured and do not have elongated tail feathers. Females and Rufose coloured male with short tails resemble each other in plumage colouration.

The mating system of the Asian Paradise Flycatcher is social monogamy despite the male's exaggerated long tail feathers which is limited in monogamous species. The breeding season lasts from May to July. Being socially monogamous both male and female take part in nest-building, incubation, brooding and feeding of the young. Three or four eggs are laid in a neat cup nest made with twigs and spider webs on the end of a low branch. Chicks hatch in about 21 to 23 days. Interspecific feeding has been seen in Paradise Fly catchers chicks fed by Oriental White Eyes.

Paradise Fly catcher is enlisted in the IUCN Threatened Species List. Hence there is urgent need to initiate strong steps to maintaining stable populations of Paradise Fly Catcher.